UGEC-101 (N)
अर्थशास्त्र के सिद्धान्त
Principles of Economics

परामर्श–समिति

प्रोफेसर सत्यकाम	**कुलपति–अध्यक्ष**
प्रो. सत्यपाल तिवारी	निदेशक, मानविकी विद्याशाखा– कार्यक्रम संयोजक
श्री विनय कुमार	कुलसचिव–सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो. सत्यपाल तिवारी	**अध्यक्ष**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ अनिल कुमार यादव	**संयोजक**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो.किरन सिंह		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. एम.के. सिंह		एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
डॉ. विश्वनाथ कुमार		एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी
डॉ. अनूप कुमार		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

सम्पादक

प्रो. (डा.) प्रहलाद कुमार — (से0नि0), पूर्व डीन, वाणिज्य संकाय, पूर्व विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

परिमापक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

लेखक मण्डल

लेखक

डॉ. अनिल कुमार यादव

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

खण्ड–1 इकाई–1, 2, 3, 4, 5, 6

खण्ड–2 इकाई–1, 2, 3, 4, 5

खण्ड–3 इकाई–1, 2, 3

खण्ड–4 इकाई–1, 2, 3, 4, 5

मुद्रित– (माह), (वर्ष)

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – (वर्ष)

ISBN-

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, (माह) (वर्ष), (मुद्रक का नाम व पता)

UGEC-101(N)

अर्थशास्त्र के सिद्धान्त
Principles of Economics

खण्ड – 1 अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, राष्ट्रीय आय, उपभोक्ता व्यवहार एवं माँग

1. अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं विषय – क्षेत्र, व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र
2. राष्ट्रीय आय अवधारणाएँ, मापन की विधियाँ, राष्ट्रीय आय का आर्थिक विकास में महत्व
3. उपभोक्ता का सन्तुलन
4. उपयोगिता का गणना वाचक एवं क्रम वाचक दृष्टिकोण एवं व्यवहारवादी विश्लेषण उदासीनता वक्र विश्लेषण, प्रकट अधिमान सिद्धान्त, उपभोक्ता का संतुलन (हिक्स एवं स्लट्स्की)
5. माँग का अर्थ, माँग को निर्धारित करने वाले तत्त्व, माँग तालिका, माँग वक्र, माँग का नियम
6. माँग की लोच–अर्थ, परिभाषा, कीमत आय, एवं तिर्यक लोच मापने की विधियाँ

खण्ड – 2 उत्पादन, लागत सिद्धान्त एवं बाजार

1. उत्पादन फलन, परिवर्तनशील अनुपात का नियम
2. पैमाने का प्रतिफल एवं लागत की अवधारणाएँ
3. बाजार का अर्थ और उसके विभिन्न रूपःतत्व एवं वर्गीकरण
4. पूर्ण प्रतियोगिता, विशुद्ध एकाधिकार एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगितायें : अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएँ
5. पूर्ण प्रतियोगिता, विशुद्ध एकाधिकार एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिताओं के औसत और सीमान्त आगम के वक्र तथा माँग वक्र

खण्ड – 3 फर्म एवं उद्योग का सन्तुलन एवं कीमत निर्धारण

1. पूर्ण प्रतियोगिता : अल्पकालीन बाजार एवं दीर्घकालीन बाजार में फर्म एवं उद्योग का सन्तुलन
2. विशुद्ध एकाधिकार : अल्पकालीन बाजार एवं दीर्घकालीन बाजार में फर्म का संतुलन
3. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिताएँ : अल्पकालीन बाजार एवं दीर्घकालीन बाजार में फर्म का संतुलन, अल्पाधिकार

खण्ड 4 – वितरण, आर्थिक व्यवस्था

1. वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त
2. लगान : रिकार्डो का सिद्धान्त, लगान का आधुनिक सिद्धान्त
3. मजदूरी : परिचय, नकद एवं असल मजदूरी, मजदूरी निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त
4. ब्याज : क्लासिकल सिद्धान्त, ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त
5. लाभ : नाइट जोखिम एवं अनिश्चितता वहन, प्रो. जे.के.मेहता का लाभ सिद्धान्त, शुम्पीटर का सिद्धान्त

खण्ड–1
अर्थशास्त्र के सिद्धान्त, राष्ट्रीय आय, उपभोक्ता व्यवहार एवं माँग
इकाई–01
अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं विषय–क्षेत्र, व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 अर्थशास्त्र की परिभाषा
1.3 अर्थशास्त्र के महत्व
1.4 अर्थशास्त्र के विभाग
1.5 पूंजीवाद की विशेषता
1.6 पूंजीवाद के लाभ
1.7 पूंजीवाद की आलोचनाएं
1.8 समाजवाद
1.9 समाजवाद का अभिप्राय
1.10 समाजवाद की विशेषताएं
1.11 समाजवाद का लाभ
1.12 समाजवाद का दोष
1.13 मिश्रित अर्थव्यवस्था
1.14 मिश्रित अर्थव्यवस्था का अभिप्राय
1.15 मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएं
1.16 मिश्रित अर्थव्यवस्था के लाभ
1.17 मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोष
1.2 बोध प्रश्न
1.3 अर्थशास्त्र के विभाग
1.4 व्यष्टि अर्थशास्त्र
1.5 समष्टि अर्थशास्त्र
1.6 बोध प्रश्न
1.7 व्यष्टि समष्टि में अन्तर
1.8 बोध प्रश्न

1.9 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र की एक दूसरे पर निर्भरता
1.10 निष्कर्ष
1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि –

- अर्थशास्त्र क्या है? तथा इसका अध्ययन कितने भागों में किया जाता है।
- अर्थशास्त्र की उपयोगितता क्या है?
- व्यष्टि एवं समश्टि अर्थशास्त्र क्या है?
- व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र की एक दूसरे पर निर्भरता को समझ पायेंगे।
- भारत में अर्थशास्त्र का महत्व, उपयोगिता एवं प्रासंगिकता समझ पायेंगे।
- अर्थव्यवस्था के विविध स्वरूप
- पूँजीवाद, समाजवाद तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था

1.1 प्रस्तावना (Introduction)–

1.2 अर्थशास्त्र की परिभाषा

सामाजिक विज्ञान शब्द का प्रयोग अधिकतर अर्थशास्त्र को संदर्भित करने के लिए किया जाता है। समाज में रहने वाले व्यक्ति की आर्थिक क्रियाएँ इस अध्ययन का केन्द्र बिन्दु है। अर्थव्यवस्था का हिस्सा मानी जाने वाली गतिविधियाँ वे है, जो मनुष्य की आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु सीमित संसाधनों के प्रभावी उपयोग पर केन्द्रित हैं। यह सुनिश्चित करने के बाद भोजन, आवास व कपड़े जैसी सबसे मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। ध्यान फिर यह सुनिश्चित करने के लिए स्थानांतरित हो जाता है कि अन्य इच्छाएँ भी पूर्ण हों। मनुष् की इच्छाएँ

असीमित है, इस अर्थ में कि जैसे ही एक इच्छा पूरी होती है, उसके स्थान पर दूसरी इच्छा प्रकट हो जाती है। इन इच्छाओं को पूरा करने के अधिकांश तरीके प्रतिबंधित हैं क्योंकि इनकी आपूर्ति व मांग के बीच अंतर है। इन विधियों का उपयोग विभिन्न तरीकों से किया जा सकता है, तो काफी चुनैतियाँ उत्पन्न करता है कि कौन सा विकल्प चुनना है। प्राकृतिक दुनिया में उनकी सीमित उपलब्धता के कारण, उच्चतम संभव स्तर की खुशी प्राप्त करने के लिए संसाधनों को उपलब्ध विकल्पों की सीमाओं के भीतर उत्पादक उपयोग के लिए रखा जाना चाहिए। अर्थशास्त्र की समझ हमें ऐसे विकल्प चुनने में मदद करती है जो हमारे सर्वोत्तम हित में हों। प्रयास व संतोष के स्तर आर्थिक सिध्दान्त और व्यवहार में सभी आवश्यक पूर्वाग्रह हैं। दूसरे शब्दों में यह उन वस्तुओं व सेवाओं पर चुनाव करने से संबंधित है जो अर्थव्यवस्था में बनने जा रहे है इसके साथ ही उन वस्तुओं व सेवाओं को सबसे अधिक लागत प्रभावी तरीके से कैसे उत्पन्न किया जाए और इसके विस्तार को कैसे सुनिश्चित किया जा सके। अर्थशास्त्र के अध्ययन ज्ञान का अपना विशिष्ट निकाय है। अर्थशास्त्र इस बात का अध्ययन है कि लोग अपनी असीमित मांगों को पूर्ण करने के लिए सीमित संसाधनों का उपयोग कैसे करते है। मनुष्य के लिए उपलब्ध समय और धन की मात्रा परिमित है। उसके लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह अपने समय और संसाधनों को इस तरह से आवंटित करे, जिससे उसे उपलब्धि का सबसे बड़ा एहसास हो। मनुष्य को भोजन, वस्त्र और सोने के लिए स्थान चाहिए। इन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए उसके पास धन होना आवश्यक है। धन प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना आवश्यक है। किसी के प्रयासों का प्रतिफल खुशी है। इसलिए, अर्थशास्त्र की विषय वस्तु को इच्छाओं, प्रयासों और संतुष्टि के रुप में अभिव्यक्त किया जा सकता है। यह विशेष रुप से आदिम समाजों में आर्थिक विकास के प्रारंभिक चरणों पर लागू होता है, क्योंकि जरुरतों, प्रयासों व संतुष्टि के मध्य सीधा संबंध होता है। इस इकाई में वैश्विक पटल पर पायी जाने वाली विभिन्न प्रकार की अर्थव्यवस्था जैसे पूँजीवाद, समाजवाद तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था की परिभाषा, गुण तथा दोषों को समझाया गया है।

इस उपकार्यक्रम के भीतर तीन कार्य धाराएँ है–

- व्यष्टि आर्थिक नीति
- समष्टि आर्थिक नीति

- आर्थिक संरचना

बोध प्रश्न–1: अथशास्त्र किसे कहते हैं एवं अर्थशास्त्र का महत्व बताइये।

समष्टि आर्थिक नीति

सरकार अपने विकासात्मक कार्यक्रम की प्रगति की निगरानी के लिए करों, सार्वजनिक व्यय, सब्सिडी, ऋण उपलब्धता और ब्याज दर में बदलाव सहित कई तरह के नीतिगत उपायों का उपयोग करती है। व्यापक आर्थिक नीति का लक्ष्य यह सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न नीतिगत उपकरणों के उपयोग का समन्वय करना है कि वे स्थायी मानव विकास परिणामों के वितरण में योगदान करते है। समष्टि आर्थिक नीति का प्रभाव, अन्य बातों के अलावा, रोजगार के स्तर, निवेश के स्तर और समग्र आर्थिक विकास पर पड़ता है। यह नीति के प्रमुख उत्तोलक में से एक है। एक ऐसे माहौल के निर्माण के लिए उपयुक्त समष्टि आर्थिक नीति का कार्यान्वयन आवश्यक है जो प्रत्येक समय नई नौकरियों के स्थिर निर्माण के लिए अनुकूल हो। समष्टि आर्थिक नीति पर काम करने से उन ट्रेड आफ्स की व्याख्या होनी चाहिए जो सरकार किसी विशेष समय पर सामना करती है और इन ट्रेड आफ्स के आलोक में निर्णय लेते समय सरकार को पालन करने की सिफारिशें पेश करती है। इस कार्य धारा का उद्देश्य राष्ट्र हेतु विस्तारित कई व्यापक आर्थिक नीति विकल्पों का निर्धारण करना और विश्लेषण करना है कि ये विभिन्न संभावनाएँ विकास एवं बेहतर कार्य उद्देश्यों के विरुध्द कैसे खड़ी होती है और नीतिगत समस्याओं पर अपने सुझाव को प्रस्तावित करती है। ऐसा करने में यह सरकार के नीतिगत उद्देश्यों, अंतर्राष्ट्रीय अनुभवों, विकास की प्राथमिकताओं और विश्व अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति द्वारा प्रदान की गई चुनौतियों पर उचित विचार करते हुए प्रासंगिक व्यापक आर्थिक नीति संबंधी चिंताओं को स्वीकार करेगा।

व्यष्टि आर्थिक नीति

व्यष्टि आर्थिक नीति का क्षेत्र व्यक्तिगत उद्यमों, परिवारों और संपूर्ण आर्थिक क्षेत्रों के विकास पर आर्थिक नीतियों के प्रभावों का अध्ययन करता है। यह वास्तविक अर्थव्यवस्था में निवेश के प्रोत्साहन, आर्थिक संस्थानों की दक्षता व उत्पादकता को सुनिश्चित करना चाहता है, जिससे अंततः आय के स्तर और

जीवन स्तर में वृध्दि होगी। इस कार्यधारा का उद्देश्य कई सूक्ष्म आर्थिक नीति विकल्पों को निर्धारित करना है जो अब सुलभ है, समग्र विकास एवं अच्छी तरह से संचालित कार्य उद्देश्यों के प्रकाश में उन संभावनाओं का मूल्यांकन करें और नीति व निष्पादन से संबंधित चिंताओं के बारे में सरकारी नीति के सदस्यों का सुझाव प्रदान करें। इसके परिणामस्वरुप यह निर्धारित करेगा कि सरकार के समग्र नीतिगत लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए कौन सी सूक्ष्म आर्थिक नीति संबंधी चिंताएँ प्रासंगिक है। यह वास्तविक अर्थव्यवस्था फर्मों पर एक आर्थिक नीति सम्बन्धित आवश्यक कार्यों का संचालन स्थापित करेगा, जो आर्थिक उद्यम है जिनमें राज्य की हिस्सेदारी है और यह इसकों प्रोत्साहन भी देता है। जिन्हें राज्य सहायता प्राप्त हुई है। यह इसे अपने कर्तव्यों को पूरा करने हेतु यथासंभवन कुशलता से करने की अनुमति देगा। अपने कर्तव्यों को पूरा करने के लिए कार्यधारा अनुसंधान करेगी और ऐसी नीतियाँ तैयार करेगी जो पूर्ण रोजगार एवं समान रोजगार के अवसरों के निर्माण में योगदान दे सके।

आर्थिक संरचना

अर्थव्यवस्था एक जटिल प्रणाली है जो अपनी पहल पर चलती है। जब नीति के बारे में सोचने की प्रक्रिया की बात आती है, तो एक औपचारिक और मात्रात्मक संरचना का होना काफी सहायक होता है। एक ऐसी संरचना के उपयोग से जो आर्थिक चरों के बीच आवश्यक संबंधों को रेखांकित करता है। कई आर्थिक नीतिगत पहलों को तभी प्रभावी रुप से समझा जा सकता है और उन पर बहस भी की जा सकती है यदि उन्हें एक संरचना के रुप में प्रस्तुत किया जाए। समष्टि आर्थिक नीति स्तर पर जहाँ प्रत्येक वस्तु हर एक वस्तु से संबंधित होती है। नीति प्रस्ताव के संभावित परिणामों का विश्लेषण करते समय एक संरचना का उपयोग करना महत्वपूर्ण है। आर्थिक संरचना विभिन्न नीतियों के बीच तालमेल स्थापित करने में सहायक होते है क्योंकि वे अर्थव्यवस्था में अनुभवजन्य रुप से प्रासंगिक प्रभावों और अप्रत्यक्ष संबंधों पर अपना प्रसार करती है। वे समग्र चर (जैसे विकास, रोजगार, मुद्रास्फीति आदि) क्षेत्र के प्रदर्शन, गरीबी एवं असमानता पर नीतिगत सुझावों के प्रहार को भी गिनते है। इस कार्यधारा के लक्ष्यों को संक्षेप में प्रस्तु करता है। विभिन्न प्रकार के नीति संयोजनों के जवाब में अर्थव्यवस्था द्वारा अपनाए जा सकने वाले संभावित भावी पाठ्यक्रमों की रुपरेखा तैयार करना और उनका तार्किक तरीके से विश्लेषण करना है। प्राथमिक वृध्दि व विकास सूचकांक

पर पड़ने वाले विभिन्न नीतिगत विकल्पों वं चुनौतियों के प्रभाव का मात्रात्मक विश्लेषण करने का प्रयास करता है। अर्थव्यवस्था पर अनिश्चितता के प्रभावों का विश्लेषण करने के लिए यह प्रदर्शित करने के लिए कि बाहरी तत्वों की स्थिति जैसे कि तेल और वैश्विक वाणिज्य की कीमत में विभिन्न परिवर्तनों पर संस्थाएँ कैसे प्रतिक्रिया करेगा।

1.3 अर्थशास्त्र के महत्व

अर्थशास्त्र के महत्व को स्पष्ट करते हुए समाजशास्त्री डरविन अपने कथन में कहते है कि वर्तमान युग का बौध्दिक धर्म अर्थशास्त्र है। सैध्दान्तिक और व्यावहारिक रुप से अर्थशास्त्र में दोनों का ही महत्व है। सैध्दान्तिक महत्व के अन्तर्गत अनेक प्रकार की आर्थिक घटनाओं का विश्लेषण किया जाता है जिससे ज्ञान में वृध्दि होती है और इसमें वैश्विक स्तर पर असमान धन वितरण के कारण व परिणान का अवलोकन प्राप्त हो सकता है। अर्थशास्त्र के अध्ययन में स्वाभाविक रुप से मस्तिष्क में तर्क सम्बन्धी योग्यता व निरीक्षण की क्षमता का विकास होता है। अर्थशास्त्र के अध्ययन का व्यावहारिक महत्व कुछ इस प्रकार से है। उपभोक्ताओं, किसानों, श्रमिकों को लाभ इत्यादि के माध्यम से इसके महत्व को जाना जा सकता है। वर्तमान युग उपभोक्तावादी है जिसमें अपनी सीमित आय से अधिकतम संतुष्टि का मूल्याँकन उपभोक्ता की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण होता है। किसानों को कृषि से सम्बन्धित सभी जानकारियाँ एवं कृषि उत्पादन की नवीनतम तकनीकी से जुड़ी सभी जानकारी अर्थशास्त्र के द्वारा ही संभव है। श्रमिकों का लाभ का अध्ययन अर्थशास्त्र के द्वारा ही हो पाता है।

1.4 पूँजीवाद

पूँजीवाद उस आर्थिक प्रणाली को संदर्भित करता है, जहाँ उत्पादन के सभी साधन जैसे – पूँजीगत सामान, श्रम, प्रकृतिक संसाधन और उद्यमिता को निजी व्यवसायों/संस्थाओं द्वारा नियंत्रित व विनियमित किया जाता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सभी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन बाजार में माँग तथा आपूर्ति पर निर्भर होता है। इसे बाजार अर्थव्यवस्था भी कहते हैं।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता लाभ का अर्जन है। पूँजीवाद की उत्पत्ति 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति का परिणाम है।

1.5 पूँजीवाद की विशेषताएँ

पूँजीवाद की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

i. **निजी सम्पत्ति** – उत्पादन में प्रयुक्त कारखानों, मशीनों, उपकरणों आदि पर निजी व्यक्तियों/कम्पनियों का स्वामित्व होता है।
ii. **अहस्तक्षेप प्रणाली** – प्रत्येक व्यक्ति को उद्यम की स्वतंत्रता होती है तथा बिना किसी हस्तक्षेप के अपने आर्थिक निर्णय लेने का अधिकार होता है।
iii. **लाभ का उददेश्य** – पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सभी उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के उददेश्य से उत्पादन करते हैं।
iv. **मूल्य तंत्र** – बाजार मूल्य प्रणाली होती है, जहाँ सरकार की कोई भागीदारी नहीं होती है।
v. **मुक्त व्यापार** की स्थिति पायी जाती है।
vi. पूँजीवाद में कार्यबल को काम पर रखने और निकालने में **लचीलापन** होता है।

1.6 पूँजीवाद के लाभ

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में अधिक दक्षता होती है, क्योंकि उत्पादन निर्धारण बाजार माँग के अनुसार होता है। यह किसी भी प्रकार के भेदभाव को हतोत्साहित करता है, ताकि व्यापार के दो पक्षों के बीच बिना किसी बाधा के व्यापार हो सके। पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में व्यक्तिगत लाभ बढ़ाने हेतु इकाईयों की प्रतिस्पर्धा द्वारा उन्नति के संसाधन कम लाभ से अधिक लाभ वाले उत्पादन क्षेत्रों में स्थानांतरित होने लगते हैं, जिससे संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग होता है।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में तकनीकी विकास की संभावनाएँ सदैव विद्यमान रहती हैं तथा पूँजी निर्माण को प्रोत्साहन मिलता है। पूँजीवाद में बचत, विनियोग एवं पूँजी निर्माण की दर अधिक होने के कारण विकास दर तीव्र गति से बढ़ती है।

1.7 पूँजीवाद की आलोचनाएँ

1. पूँजीवाद में आय तथा सम्पति का असमान वितरण होता है, जो सामाजिक असमानताएँ उत्पन्न करता है।
2. पूँजीवाद में समाज आर्थिक आधार पर दो वर्गों में बँट जाता है, जिससे वर्ग–संघर्ष तथा सामाजिक अशान्ति की स्थिति उत्पन्न होती है।
3. पूँजीवाद में एकाधिकारी प्रवृत्ति का उदय होता है।
4. पूँजीवाद में पूर्ण रोजगार प्राप्त न होने के कारण प्राकृतिक व मानवीय संसाधनों का सम्पूर्ण प्रयोग नहीं हो पाता है, जिससे संसाधनों का अपव्यय होता है।

5. पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में मांग एवं पूर्ति बलों के स्वतंत्र कार्य करने के कारण समय –समय पर मांग एवं पूर्ति बलों में असंतुलन द्वारा व्यापार चक्र के उच्चावचन अर्थव्यवस्था में अस्थिरता बनायें रखते हैं।

1.8 समाजवाद

''समाजवाद समाज का ऐसा आर्थिक संगठन है, जिसमें उत्पत्ति के भौतिक साधनों पर सामाजिक स्वामित्व होता है तथा उनका संचालन एक सामान्य योजना के अन्तर्गत , सम्पूर्ण समाज के प्रतिनिधि एवं उत्तरदायी संस्थाओं द्वारा होता है।

1.9 समाजवाद का अभिप्राय

समाजवाद का उदय पूँजीवाद की एक वैकल्पिक आर्थिक प्रणाली के रूप में हुआ। समाजवाद के अभिप्राय को लेकर अर्थशास्त्रियों के मतों में भिन्नता पायी जाती हैं। फिर भी निम्नलिखित परिभाषा को समाजवाद के संदर्भ उपयुक्त माना जा सकता है–

मॉरिस डॉब के अनुसार – समाजवाद की आधारभूत विशेषता यह है कि इसमें सम्पन्न वर्ग की सम्पत्ति का अधिग्रहण एवं भूमि तथा पूँजी का सामाजीकरण करके उन वर्ग सम्बन्धों का समाप्त कर दिया जाता है, जो पूँजीवादी उत्पादन का आधार है।

1.10 समाजवाद की विशेषताएँ

एक समाजवादी आर्थिक प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. उत्पत्ति के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व न होकर समाज का सामूहिक स्वामित्व होता है।
2. उत्पादन एवं वितरण क्रियाएँ राज्य/सरकार द्वारा सम्पादित होती हैं।
3. समाजवाद में आर्थिक क्रियाओं के संचालन हेतु एक केन्द्रीकृत सत्ता गठित की जाती है।
4. निजी सम्पत्ति के अधिकार, व्यक्तिगत लाभ की अनुपस्थिति के कारण समाजवाद में आर्थिक असमानता समाप्त हो जाती है।
5. पूँजीवाद के विपरीत समाजवाद में कीमत निर्धारण कीमत संयंत्र द्वारा न होकर , सरकार की शक्ति द्वारा होता है।
6. मानव के श्रम के शोषण का अंत हो जाता है।
7. समाजवाद में सरकार की सक्रिय भूमिका के कारण पारस्परिक प्रतियोगिता की सम्भावना समाप्त हो जाती है।
8. अनर्जित आय प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं रहती तथा प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करके आय अर्जित करता है।

1.11 समाजवाद के प्रमुख लाभ

(i) उत्पत्ति के संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग।
(ii) व्यापार चक्रों की समाप्ति तथा आर्थिक स्थायित्व।
(iii) आर्थिक समानता एवं सामाजिक न्याय।
(iv) वर्ग–संघर्ष की समाप्ति।
(v) आर्थिक शोषण की समाप्ति।
(vi) बेरोजगारी का निराकरण।

1.12 समाजवाद के दोष

1. व्यक्तिगत लाभ की सम्भावना में न्यूनता के कारण समाजवाद में नवीन अविष्कारों, तकनीकों आदि का विकास नहीं हो पाता है।
2. समाजवादी अर्थव्यवस्था लाल–फीताशाही तथा नौकरशाही के दोषों से ग्रसित होती है।
3. समस्त आर्थिक शक्तियाँ सरकार में केन्द्रीकृत होती हैं जिससे उपभोक्ता को चयन की स्वतंत्रता से वंचित होना पड़ता है।
4. समाजवादी आर्थिक प्रणाली में पूँजी निर्माण प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हैं क्योंकि सभी संसाधन सरकार के अधीन होते हैं।

5 प्रो0 हायक के अनुसार समाजवाद में व्यक्तिगत स्वंतत्रता, व्यावसायिक स्वतंत्रता एवं उपभोक्ता की प्रभुता समाप्त हो जाती है, क्योंकि व्यक्ति सरकार पर आश्रित हो जाता है।

1.13 मिश्रित अर्थव्यवस्था

मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का सह अस्तित्व होता है। यह निजी उपक्रम तथा निजी लाभों का समर्थन करती है, परन्तु साथ ही साथ सम्पूर्ण समाज के हितों की रक्षा के लिए सरकार के अस्तित्व को भी महत्वपूर्ण मानती हैं।

1.14 अभिप्राय

यह आर्थिक प्रणाली पूँजीवाद तथा समाजवाद दोनों के आदर्श लक्षणों का देश की आवश्यकतानुसार समावेश करने का एक प्रयास हैं अर्थात् मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली पूँजीवाद और समाजवाद की मिश्रण प्रतीत होती है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था में यही प्रयास रहता है कि निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों संयुक्त रूप से इस प्रकार कार्य करें , जिससे देश के सभी वर्गों का आर्थिक कल्याण बढ़े एवं देश में वृद्धि व

विकास की संभावनाएँ सृजित हों। स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रणाली को अपनाया है।

1.15 मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

मिश्रित अर्थव्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों का सह अस्तित्व –

मिश्रित अर्थव्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता निजी तथा सार्वजनिक उपक्रम दोनों का सह–अस्तित्व है। सामाजिक लाभ हेतु महत्वपूर्ण उद्योगों पर सरकार का अधिकार होता हैं।

(2) प्रशासित मूल्य –

वस्तु की कीमत निर्धारण की दोहरी प्रणाली पायी जाती है। निजी क्षेत्रों में कीमत , बाजार में स्वतंत्र तथा सार्वजनिक क्षेत्र में वस्तु की कीमत सरकार द्वारा निर्धारित होती है।

(3) आर्थिक नियोजन –

मिश्रित अर्थव्यवस्था में नियोजित प्रणाली द्वारा सरकार आर्थिक नीतियों का निर्माण करती है।

(4) क्षेत्रीय संतुलन –

सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर सरकार का नियंत्रण होने के कारण, सरकार क्षेत्रीय संतुलन को ध्यान में रखकर सामाजिक विकास करती हैं।

1.16 मिश्रित अर्थव्यवस्था के लाभ

1. पूँजीवाद , समाजवाद दोनों के आदर्शों का समावेश
2. व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण
3. आपसी विषमता में कमी
4. आर्थिक उच्चावचन पर नियंत्रण
5. अल्पविकसित देशों का संतुलित विकास

1.17 मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोष

1. संचालन – समन्वय में कठिनाई
2. अस्थायी लाभ , सार्वजनिक क्षेत्र में हानि।
3. आर्थिक विकास की मध्यम गति ।
4. औपचारिकता एवं पक्षपात को बढ़ावा।
5. उत्पादन दक्षता में कमी।

1.2 बोध प्रश्न

1. पूँजीवाद क्या है?

2. मिश्रित अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं?

1.3 अर्थशास्त्र के विभाग

अर्थशास्त्र की विषय वस्तु पर पारंपरिक पद्धति या आधुनिक दृष्टिकोण का उपयोग करके चर्चा की जा सकती है। इन्हें दृष्टिकोण के रुप में जाना जाता है। दृष्टिकोण जो पारंपरिक है और इसने अर्थशास्त्र को धन के अध्ययन के रुप में देखा एवं इसे चार उपक्षेत्रों में विभाजित किया है।

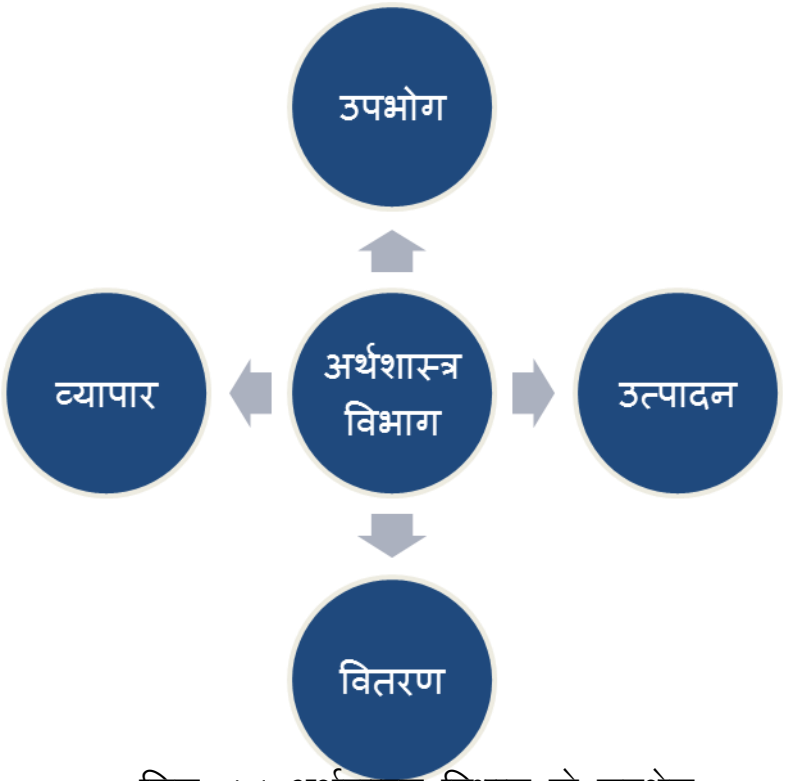

चित्र–1.1 अर्थशास्त्र विभाग के उपक्षेत्र

- उपभोग का तात्पर्य किसी की अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने हेतु अपने संसाधनों का उपयोग करने की क्रिया से है। यह मानवीय इच्छाओं को पूरा करने के लिए वस्तुओं एवं सेवाओं की उपयोगिता या उपयोग के उन्मूलन को भी दर्शाता है।
- किसी वस्तु को उपयोगी बनाने की प्रक्रिया को उत्पादन कहा जाता है। इसमें अमूर्त इनपुट (विचार, ज्ञान और जानकारी) और भौतिक इनपुट (कच्चे माल, आधे पूर्ण वस्तुओं या उपसमूहों) के वस्तुओं या सेवाओं में अनुवाद में लागू प्रक्रियाओं और सीमाओं को शामिल किया गया है।
- विनिमय शब्द का अर्थ धन या वस्तुओं को एक के बदले दूसरी वस्तु या धन के रुप में स्थानंतरित करने के कार्य को संदर्भित करता है। यह लोगों के बीच या राष्टों के बीच हो सकता है। व्यापार के परिणामस्वरुप उत्पादों व सेवाओं के लिए अधिक उपयोगिताओं की स्थापना से व्यक्तिगत हित में वृध्दि होती है, जिसके परिणामस्वरुप समग्र सामाजिक कल्याण में वृध्दि होती है।
- वितरण उत्पादन के कई तत्वों के बीच सृजित धन को विभाजित करने की प्रक्रिया है। यह धन के व्यक्तिगत वितरण के साथ साथ राजस्व के कार्यात्मक वितरण दोनों को संदर्भित करता है। शब्द व्यक्तिगत वितरण उन कारकों को संदर्भित करता है जो यह निर्धारित करते है कि किसी राष्ट्र की आय और धन उसकी आबादी के कई अलग अलग लोगों में कैसे फैला हुआ है। कार्यात्मक वितरण जिसे कारक शेयर वितरण के रुप में भी जाना जाता है। कुल राजस्व के अनुपात का एक स्पष्टीकरण है जो उत्पादन के चार कारकों में से प्रत्येक द्वारा प्राप्त किया जाता है, जो क्रमशः भूमि, श्रम और पूंजी है।

यदि हम अर्थव्यवस्था की प्रगति का मूल्यांकन करना चाहते है तो हमें अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के कार्य के बारे में जानकारी प्राप्त करनी होगी और प्रत्येक क्षेत्र के कार्य की जानकारी के लिए उस क्षेत्र की उत्पादन इकाइयों की प्रगित के बारे में व्यक्तिगत या सामूहिक रुप से जानकारी प्राप्त करनी होगी। उत्पादन इकाइयों के प्रत्येक समूह या प्रत्येक क्षेत्र का अध्ययन व्यष्टिगत आर्थिक अध्ययन है जबकि पूरी अर्थव्यवस्था की प्रगति का अध्ययन समष्टिगत आर्थिक अध्ययन है। अतः व्यष्टिगत और समष्टिगत अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र के दो पारस्परिक संबंधित भाग है।

अर्थशास्त्र के अध्ययन को दो अलग अलग लेकिन संबंधित भागों में विभाजित किया जा सकता है–

- व्यष्टि अर्थशास्त्र
- समष्टि अर्थशास्त्र

1.4 व्यष्टि अर्थशास्त्र

व्यष्टि अर्थशास्त्र अत्यन्त ही सूक्ष्म स्तर पर अर्थशास्त्र के अध्ययन का अर्थ प्रस्तुत करता है। जिसमें एक समाज में व्याप्त सामूहिक रुप से बहुतायत व्यक्ति समावेशित होते है और उसमें अकेला व्यक्ति उस अर्थशास्त्र का एक सूक्ष्म भाग होता है। जिसके कारण एक अकेले व्यक्ति द्वारा लिये गये आर्थिक रुप से निर्णय को व्यष्टि अर्थशास्त्र के रुप में जाना जाता है। संसाधनों के वितरण व विभिन्न उत्पादों व सेवाओं के मूल्य निर्धारण के संबंध में व्यक्तियों और कंपनियों द्वारा किए जाने वाले विकल्पों का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र के रुप में जाना जाता है। इसके लिए न केवल सरकारी स्तर बल्कि नियों व विनियमों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। व्यष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन आपूर्ति एवं मांग के साथ साथ अन्य कारकों पर केन्द्रित है, जो अर्थशास्त्र में मूल्य स्तर के गठन में योगदान करते है। उदाहरण के लिए व्यष्टि अर्थशास्त्र का अध्ययन इस बात का अन्वेषण करेगा कि कैसे एक विशेष व्यवसाय अपने मूल्य निर्धारण को कम करने और अपने उद्योग के भीतर प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता में सुधार करने के लिए अपने उत्पादन व क्षमता को अधिकतम कर सकता है। वास्तविक स्वरुप में व्यष्टि अर्थशास्त्र अपने नियमों सिध्दान्तों और प्रमेयों के संगत संग्रह से प्राप्त करता है।

समाजशास्त्रियों के अनुसार व्यष्टि अर्थशास्त्र–

प्रो. बोल्डिंग के अनुसार– व्यष्टि अर्थशास्त्र विशिष्ट फर्मों, विशिष्ट परिवारों, वैयक्तिक कीमतों, मजदूरियों, आयों, विशिष्ट उद्योगों और विशिष्ट वस्तुओं का अध्ययन है।

प्रो. चेम्बरलिन के अनुसार– व्यष्टि अर्थशास्त्र यह पूरी तरह से किसी की अपनी व्यक्तिगत धारणा पर निर्भर है और यह व्यक्तियों के बीच संबंधों पर भी ध्यान केन्द्रित करता है।

प्रो. मेहता के अनुसार– व्यष्टि अर्थशास्त्र यह उन कारकों का अन्वेषण करता है जिसमें विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य निर्धारण में जाते है।

1.5 समष्टि अर्थशास्त्र

समष्टि अर्थशास्त्र का क्षेत्र है जो समग्र रुप से अर्थव्यवस्था के व्यवहार का अध्ययन करता है और न केवल विशिष्ट कंपनियों पर बल्कि यह पूरी तरह से उद्योगों एवं अर्थव्यवस्थाओं को समावेशित करता है। यह सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीडीपी) जैसी अर्थव्यवस्था व्यापी घटनाओं को देखता है और यह बेरोजगारी, राष्ट्रीय आय, विकास दर और मूल्य स्तरों में परिवर्तन से कैसे प्रभावित होता है। उदाहरण स्वरुप समष्टि अर्थशास्त्र यह देखेगा कि शुध्द निर्यात में वृध्दि या कमी किसी देश के पूंजी खाते को कैसे प्रभावित करेगी व कैसे जीडीपी गैर रोजगार दर से प्रभावित होगी। जान मेनार्ड केन्स को अक्सर समाष्टि अर्थशास्त्र की स्थापना का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने व्यापक परिघटनाओं का अध्ययन करने हेतु मौद्रिक समुच्चय का उपयोग शुरु किया। कुछ अर्थशास्त्री उनके सिध्दान्त को नकारते है और इसका उपयोग करने वाले कई लोग इस बात से असहमत है कि इसकी व्याख्या कैसे की जाए। जबकि अर्थशास्त्र के ये दो अध्ययन अलग अलग दिखाई देते है, वे वास्तव में अन्योन्याश्रित है और एक दूसरे के पूरक है क्योंकि दोनों क्षेत्रों के बीच कई अतिव्यापी मुद्दे है। उदाहरण के लिए बढ़ी हुई मुद्रास्फीति (स्थूल प्रभाव) कच्चे माल की कीमत में वृध्दि का कारण होगी। कंपनियों के लिए और बदले में जनता के लिए अंतिम उत्पाद की कीमत को प्रभावित करते है। कहने का मतलब यह है कि समष्टि अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था का विश्लेषण करने के लिए नीचे से ऊपर का दृष्टिकोण अपनाता है जबकि समाष्टि अर्थशास्त्र ऊपर से नीचे का दृष्टिकोण अपनाता है। सूक्ष्मअर्थशास्त्र मानव विकल्पों और स्रोत आवंटन को समझने की कोशिश करता है और समष्टि अर्थशास्त्र ऐसे सवालों का जवाब देने की कोशिश करता है। जैसे मुद्रास्फीति की दर क्या होनी चाहिए? या क्या आर्थिक विकास को उत्तेजित करता है? भले ही, सूक्ष्म व समष्टि अर्थशास्त्र दोनों किसी भी वित्त पेशेवर के लिए मौलिक उपकरण प्रदान करते है और पूरी तरह से समझने के लिए एक साथ अध्ययन किया जाना चाहिए कि कंपनियाँ कैसे काम करती है एवं राजस्व अर्जित करती है। इस प्रकार एक पूर्ण अर्थव्यवस्था कैसे प्रबंधित व निरंतर होती है।

समाजशास्त्रियों के अनुसार समष्टि अर्थशास्त्र–

प्रो. बोल्डिंग के अनुसार, समष्टि अर्थशास्त्र व्यक्तिगत मात्राओं का अध्ययन करने पर ध्यान केन्द्रित नहीं करता है, बल्कि इन संख्याओं के कुल अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित करता है। यह व्यक्तिगत आय के साथ नहीं बल्कि राष्ट्रीय आय के साथ व्यक्तिगत मूल्य स्तरों के बिना मूल्य स्तरों के साथ और राष्ट्रीय उत्पादन से उत्पादन के बिना उत्पादन के साथ संबंधित होता है।

प्रो. चेम्बररलिन के अनुसार समष्टि अर्थशास्त्र कुल संबंधों की व्याख्या करता है।

प्रो. शुल्ज के अनुसार, समष्टि अर्थशास्त्र में मुख्य यंत्र राष्ट्रीय आय विश्लेषण है।

1.6 बोध प्रश्न1:

समष्टि अर्थशास्त्र की उपयोगिता बताइये।

1.7 समष्टि अर्थशास्त्र का महत्व

समष्टि अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में उनकी उपयोगिता को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है–

- जटिल समस्याओं का अध्ययन– अर्थव्यवस्था के इतने सारे पहलू एक दूसरे पर निर्भर करते है। आधुनिक अर्थव्यवस्था को समझना बेहद मुश्किल है। इस प्रकार व्यापाक आर्थिक विश्लेषण का उपयोग करके जटिल मुद्दों की जांच की जाती है, जो अन्य कारकों के साथ साथ पूर्ण रोजगार व व्यापार चक्र जैसे कारकों को ध्यान में रखता है।
- आर्थिक नीतियों के निर्माण में सहायक– कुल रोजगार, कुल आय, सामान्य मूल्य स्तर, सामान्य व्यापार स्तर आदि को नियंत्रित करना राज्य की प्राथमिक भूमिका है, जिसे करने के लिए सरकार की स्थापना की गई थी। इस वजह से समष्टि अर्थशास्त्र आर्थिक नीति बनाने में सरकार के लिए उपयोगी है।
- व्यष्टि अर्थशास्त्र का सहायक– व्यष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए बहुत फायदेमंद है। उदाहरण के लिए अपने स्वयं के उत्पादन के संबंध में निर्णय लेते समय, एक निर्माता इस बात से प्रभावित होने वाला है कि समग्र उत्पादन कैसा व्यवहार करने वाला है।
- आर्थिक विकास का अध्ययन– समष्टि का क्षेत्र आर्थिक विकास के अध्ययन में अनुसंधान पर महत्वपूर्ण ध्यान देता है। समष्टि अर्थशास्त्र विश्लेषण के आधार पर अर्थव्यवस्था के विकास के संसाधनों और क्षमताओं का मूल्यांकन किया जाता है। इस मूल्यांकन का उपयोग आर्थिक नीति का मार्गदर्शन करने के लिए किया जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर रोजगार, उत्पादन व राजस्व के स्तर को बढ़ाने के लिए योजनाएँ विकसित की जाती है और उन्हें क्रियान्वित किया जाता है।

1.8 व्यष्टि अर्थशास्त्र व समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर

व्यष्टि अर्थशास्त्र	समष्टि अर्थशास्त्र
व्यक्तिगत स्तर पर जुड़ी आर्थिक सम्बन्धों एवं समस्याओं का अध्ययन व्यष्टि अर्थशास्त्र के माध्यम से किया जाता है।	सम्पूर्ण अर्थशास्त्र के स्तर पर जुड़ी आर्थिक सम्बन्धों एवं समस्याओं का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र के माध्यम से किया जाता है।
इसका सम्बन्ध मुख्यरुप से एक व्यक्तिगत फर्म और उद्योग में उत्पादन व उसकी कीमत के आधार पर निर्धारण से है।	इसका सम्बन्ध मुख्यरुप से पूरी अर्थव्यवस्था के कुल उत्पादन व उसकी सामान्य कीमत के आधार पर निर्धारण से है।
व्यष्टि अर्थशास्त्र के मापन का माध्यम माँग और पूर्ति है।	समष्टि अर्थशास्त्र के मापन का माध्यम माँग और समग्र पूर्ति है।
व्यष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत जब हम किसी फर्म का अध्ययन करते है तो यह मान लेते है कि राष्ट्रीय उत्पादन पूरी तरह से स्थिर रहती है।	समष्टि अर्थशास्त्र के अन्तर्गत इसमें कुल राष्ट्रीय उत्पादन स्तर का अवलोकन किया जाता है जिसमें आय का विवरण स्थिर रहता है।

https://www.shaalaa.com/question-bank-solutions/vysti-arthshaastr-aur-smsti-arthshaastr-men-kyaa-antr-hai-smsti-arthshaastr-kaa-udbhv_241380

1.9 बोध प्रश्न4:

व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर बताइये।

1.10 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र की एक दूसरे पर निर्भरता

व्यष्टि और समष्टि अर्थशास्त्र के दो उपक्षेत्र न केवल एक दूसरे से संबंधित है बल्कि एक दूसरे के साथ असंगत भी है। ये दोनों वाक्यांश एक दूसरे से महत्वपूर्ण तरीके से जुड़े हुए है। व्यष्टि अर्थशास्त्र के सभी विषयों का विश्लेषण करने और व्यष्टि व समष्टि अर्थशास्त्र को प्रभावित करने वाले कारकों का बेहतर ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार का अध्ययन आर्थिक नीतियों एवं कार्यक्रमों के निर्माण की प्रक्रिया में सहायक होगा। अर्थव्यवस्था में परिवर्तन व प्रक्रियाओं को स्थानीय एवं बड़े पैमाने के दोनों कारकों के परिणाम के रुप में जाना जाता है, जो

एक दूसरे को प्रभावित करने की शक्ति रखते है या एक दूसरे से सीधे प्रभावित होते है। यह सामान्य ज्ञान है कि इन तत्वों का एक दूसरे पर प्रभाव हो सकता है। उदाहरण के लिए, हालांकि करों को बढ़ाने का विकल्प समष्टि अर्थशास्त्र के दायरे में है, यह निर्धारित करना कि बढ़ोत्तरी कैसे कंपनियों की पैसे बचाने की क्षमता को प्रभावित करेगी, समष्टि अर्थशास्त्र के दायरे में आती है।

यदि हम यह समझ ले कि किसी भी वस्तु की कीमत कैसे स्थापित होती है, साथ ही इस प्रक्रिया में खरीदार व विक्रेता की क्या भूमिका होती है, तो हम समग्र कीमत में होने वाले बदलावों का विश्लेषण करने में बेहतर सक्षम होंगे। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में सभी वस्तुओं का स्तर एक समान नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए अगर हमें पता होता कि सोने की कीमत कैसे स्थापित की जाती है। समष्टि अर्थशास्त्र उस पध्दति का अध्ययन है जिसके द्वारा किसी विशिष्ट वस्तु या सेवा की कीमत निर्धारित की जाती है, साथ ही इस प्रक्रिया में खरीदार व विक्रेता की भूमिका भी होती है। समष्टि अर्थशास्त्र दूसरी ओर अर्थव्यवस्था में कीमतों के समग्र स्तर का अध्ययन है। यदि हम किसी अर्थव्यवस्था के प्रदर्शन की पहचान करना चाहते है, तो हमें पहले अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के प्रदर्शन का पता लगाना होगा। अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के प्रदर्शन को निर्धारित करने के लिए हमें प्रत्येक क्षेत्र के प्रदर्शन को स्वयं या समूहों में निर्धारित करने की आवश्यकता होगी। इसी तरह यदि हम किसी अर्थव्यवस्था के प्रदर्शन का निर्धारण करना चाहते है तो हमें पहले अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र के प्रदर्शन का निर्धारण करना होगा। समष्टि अर्थशास्त्र एक उत्पादन इकाई के अलग अलग समूहों या अलग अलग खंडों के अध्ययन को संदर्भित करता है, जबकि समष्टि अर्थशास्त्र संपूर्ण अर्थव्यवस्था के अध्ययन को संदर्भित करता है जिसमें सभी उत्पादन ईकाईयाँ व खंड शामिल है। इसलिए व्यष्टि अर्थशास्त्र एवं समष्टि अर्थशास्त्र के दो उप क्षेत्र है जो एक दूसरे से जटिल रुप से जुड़े हुए है। इस वजह से अर्थशास्त्र के क्षेत्र में इन दोनों शब्दों को सीखना जरुरी है।

1.11 निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं व्यष्टि व समष्टि अर्थशास्त्र के विषय, क्षेत्र का अवलोकन करने का प्रयास किया गया है। व्यष्टि और समष्टि दोनों ही अर्थशास्त्र के आवश्यक पहलू है जिन्हें अर्थशास्त्र के क्षेत्र की अच्छी तरह से समझने हेतु इसकी जानकारी आवश्यक होती है। इस तथ्य के बावजूद कि वे कुछ प्रमुख मामलों में भिन्न है। घरेलू अर्थव्यवस्था की अच्छी समझ होना आवश्यक है, लेकिन समग्र रुप से अर्थव्यवस्था और व्यक्तिगत परिवारों की अर्थव्यवस्था की अच्छी

समझ होना भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे किसी देश की आर्थिक नीतियों को निर्धारित करने में मदद मिलती है।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सभी वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन बाजार में माँग तथा आपूर्ति पर निर्भर होता है। इसे बाजार अर्थव्यवस्था भी कहते हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता लाभ का अर्जन है। पूँजीवाद की उत्पत्ति 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति का परिणाम है। समाजवाद समाज का ऐसा आर्थिक संगठन है, जिसमें उत्पत्ति के भौतिक साधनों पर सामाजिक स्वामित्व होता है तथा उनका संचालन एक सामान्य योजना के अन्तर्गत , सम्पूर्ण समाज के प्रतिनिधि एवं उत्तरदायी संस्थाओं द्वारा होता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का सह अस्तित्व होता है। यह निजी उपक्रम तथा निजी लाभों का समर्थन करती है, परन्तु साथ ही साथ सम्पूर्ण समाज के हितों की रक्षा के लिए सरकार के अस्तित्व को भी महत्वपूर्ण मानती हैं।

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. https://www.freejankari.com/2022/07/economics-in-hindi.html
2. एंडर्टन ए., 2008, अर्थशास्त्र, पांचवे संस्करण, पियर्सन शिक्षा, 764 पीपी, आईएसबीएन 978–1–4058–9235–3
3. https://www.kailasheducation.com/2021/02/samasti-arthashastra-ke-uddeshya%20.html
4. https://www.kailasheducation.com/2020/12/vyasti-arthashastra-arth-paribhasha-visheshtaye-prakar.html
5. https://hi.thpanorama.com/articles/cultura-general/qu-es-una-estructura-econmica.html
6. https://www.freejankari.com/2022/07/economics-in-hindi.html
7. ज्योति सरवन, हीनू शर्मा, जसजीत नारंग, नाजिम उद्दीन, जगदीश चंद्र बोस के, सूक्ष्मअर्थशास्त्र कोविड–19 महामारी के प्रभाव, मीडिया विश्लेषण, एशियाई सूक्ष्म आर्थिक समीक्षा, 1(1), 3–15,2021
8. ब्लागस्पाट, 2013, समष्टि अर्थशास्त्र, http://macro2013-blogspot-com/2013/05/short&run&economic&fluctuation-html,
9. https://carleton.ca/keirarmstrong/learning-resources/selected-biographies/keynes-john-maynard-1883-1946/

10. https://www.shaalaa.com/question-bank-solutions/vysti-arthshaastr-aur-smsti-arthshaastr-men-kyaa-antr-hai-smsti-arthshaastr-kaa-udbhv_241380
11. रश्मि गुजराती, सूक्ष्म आर्थिक और मैक्रोइकानामिक– आर्थिक विकास पर मुद्दे और प्रभाव, इंटरनेशनल जर्नल आफ हाल ही में वैज्ञानिक खंड–6, अंक–7,पीपी. 5310–5317, जुलाई 2015
12. The Theory of Wages — J.R. Hicks
13. Theory of Wages — Paul Douglas
14. Income Distribution — J. Pen
15. Alternative Theories of Distribution — N. Kaldor
16. Economics of Welfare — A.C. Pigou
17. Monetary Theory — G. N. Halm
18. The General Theory of Employment, Interest and Money — J. M. Keynes
19. Capital, Interest and Profits — B. S. Keirstead
20. The Conception of Surplus in Theoretical Economics — A. K. Dass Gupta
21. Income. Employment and Economic Growth — W. C. Patterson
22. The Distribution of National Income — M. Kalecki

1.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न सं0–1 का उत्तर–

1. पूँजीवाद उस आर्थिक प्रणाली को संदर्भित करता है, जहाँ उत्पादन के सभी साधन जैसे – पूँजीगत सामान, श्रम, प्रकृतिक संसाधन और उद्यमिता को निजी व्यवसायों/संस्थाओं द्वारा नियंत्रित व विनियमित किया जाता है।

2. मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें निजी और सार्वजनिक क्षेत्र दोनों का सह अस्तित्व होता है।

प्रश्न सं0–2 का उत्तर–

1. अर्थशास्त्र मूलतः एक ऐसा सामाजिक विज्ञान है जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग का अध्ययन करता है।
2. 'अर्थशास्त्र' शब्द संस्कृत शब्दों अर्थ (धन) और शास्त्र (किसी विषय के सम्बन्ध में मनुष्यों के कार्यों के क्रमबद्ध ज्ञान को उस विषय का शास्त्र कहते हैं) की संधि से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है–धन का अध्ययन।
3. अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है।
4. अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।
5. अर्थशास्त्र के अध्ययन में ऐसे सभी भौतिक एवं गैर भौतिक पदार्थों को शामिल करते हैं जिनका मौद्रिक मूल्य होता है और जो कीमत प्रणाली में शामिल होती है।

प्रश्न सं0–3 का उत्तर–

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत गृहस्थ, श्रमिक की मजदूरी, उद्यमों के लाभ का निर्धारण आदि समस्याओं का अध्ययन सम्मिलित होता है जबकि समष्टिगत अर्थशास्त्र में सामूहिक इकाइयों पर विचार किया जाता है। यह व्यक्तिगत आय से नहीं बल्कि राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित होता है।
2. व्यष्टि अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत स्तर पर जुड़ी आर्थिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है जबकि सम्पूर्ण अर्थशास्त्र से जुड़ी समस्याओं का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र के माध्यम से किया जाता है।

3. व्यष्टि अर्थशास्त्र के मापन का माध्यम मांग और पूर्ति है जबकि समष्टि अर्थशास्त्र के मापन का माध्यम मांग और समग्र पूर्ति है।

प्रश्न सं0–4 का उत्तर–

1. व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के दोषों को दूर करने के लिए समष्टिगत आर्थिक विश्लेषण का प्रादुर्भाव हुआ।
2. आर्थिक नीतियों के निर्धारण में समष्टिगत विश्लेषण का विशेष महत्व होता है।
3. व्यष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए बहुत फायदेमंद (निर्णय लेते समय) है।
4. समष्टि का क्षेत्र आर्थिक विकास के अध्ययन में अनुसंधान पर महत्वपूर्ण ध्यान देता है।
5. यह अन्य कारकों के साथ–साथ पूर्ण रोजगार व व्यापार चक्र जैसे कारकों को ध्यान में रखता है।

1.14 अभ्यासार्थ प्रश्न (न्दपज.मदक फनमेजपवदे)

1. अर्थशास्त्र से आप क्या समझते हैं? अर्थशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता पर प्रकाश डालिये।
2. भारत में अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिये।
3. अर्थशास्त्र के विभाग बताइये।
4. अर्थशास्त्र का अध्ययन कितने भागों में किया जाता है।
5. व्यष्टि अर्थशास्त्र किसे कहते हैं?
6. समष्टि अर्थशास्त्र किसे कहते हैं?
7. व्यष्टि और समष्टि अर्थशास्त्र में अन्तर बताइये।
8. समष्टि अर्थशास्त्र का महत्व बताइये।
9- समष्टि अर्थशास्त्र, व्यष्टि अर्थशास्त्र के दोषों को कैसे दूर करता है?

प्रश्न सं0–1 का उत्तर–

1. अर्थशास्त्र मूलतः एक ऐसा सामाजिक विज्ञान है जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, वितरण, विनिमय और उपभोग का अध्ययन करता है।
2. 'अर्थशास्त्र' शब्द संस्कृत शब्दों अर्थ (धन) और शास्त्र (किसी विषय के सम्बन्ध में मनुष्यों के कार्यों के क्रमबद्ध ज्ञान को उस विषय का शास्त्र कहते हैं) की संधि से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ है–धन का अध्ययन।
3. अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है।
4. अर्थशास्त्र मानव व्यवहार का अध्ययन करता है।
5. अर्थशास्त्र के अध्ययन में ऐसे सभी भौतिक एवं गैर भौतिक पदार्थों को शामिल करते हैं जिनका मौद्रिक मूल्य होता है और जो कीमत प्रणाली में शामिल होती है।

प्रश्न सं0–2 का उत्तर–

4. व्यष्टि अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत गृहस्थ, श्रमिक की मजदूरी, उद्यमों के लाभ का निर्धारण आदि समस्याओं का अध्ययन सम्मिलित होता है जबकि समष्टिगत अर्थशास्त्र में सामूहिक इकाइयों पर विचार किया जाता है। यह व्यक्तिगत आय से नहीं बल्कि राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित होता है।
5. व्यष्टि अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत स्तर पर जुड़ी आर्थिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है जबकि सम्पूर्ण अर्थशास्त्र से जुड़ी समस्याओं का अध्ययन समष्टि अर्थशास्त्र के माध्यम से किया जाता है।
6. व्यष्टि अर्थशास्त्र के मापन का माध्यम मांग और पूर्ति है जबकि समष्टि अर्थशास्त्र के मापन का माध्यम मांग और समग्र पूर्ति है।

प्रश्न सं0–3 का उत्तर–

1. व्यष्टिगत अर्थशास्त्र के दोषों को दूर करने के लिए समष्टिगत आर्थिक विश्लेषण का प्रादुर्भाव हुआ।
2. आर्थिक नीतियों के निर्धारण में समष्टिगत विश्लेषण का विशेष महत्व होता है।
3. व्यष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए बहुत फायदेमंद (निर्णय लेते समय) है।
4. समष्टि का क्षेत्र आर्थिक विकास के अध्ययन में अनुसंधान पर महत्वपूर्ण ध्यान देता है।
5. यह अन्य कारकों के साथ–साथ पूर्ण रोजगार व व्यापार चक्र जैसे कारकों को ध्यान में रखता है।

खण्ड – 1 इकाई – 2

राष्ट्रीय आय अवधारणाएँ, मापन की विधियाँ, राष्ट्रीय आय का आर्थिक विकास में महत्व

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 राष्ट्रीय आय की परिभाषाएँ

2.2.1 मार्शल की परिभाषा

2.2.2 पीगू की परिभाषा

2.2.3 फिशर की परिभाषा

2.2.4 आधुनिक दृष्टिकोण

2.3 राष्ट्रीय आय की धारणाएँ

2.4 साधन लागत एवं बाजार कीमत पर राष्ट्रीय आय

2.5 राष्ट्रीय आय : मापन की विधियाँ
- 2.5.1 आय विधि
- 2.5.2 व्यय विधि
- 2.5.3 उत्पादन अथवा मूल्य – वृद्धि दृष्टिकोण

2.6 राष्ट्रीय आय के मापन में कठिनाइयाँ

2.7 राष्ट्रीय आय तथा आार्थिक विकास

2.8 बोध प्रश्न

2.9 सारांश

2.10 शब्दावली

2.11 संदर्भ ग्रंथ

2.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेंगे कि

1. राष्ट्रीय आय क्या होती है?
2. राष्ट्रीय आय की विभिन्न धारणाएँ क्या हैं?
3. विभिन्न विधियों के द्वारा राष्ट्रीय आय का मापन कैसे किया जाता है?

2.1 प्रस्तावना

राष्ट्रीय आय से अभिप्राय , साधारण शब्दों में किसी देश में एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य से है। अन्य शब्दों में एक देश में वर्ष भर में आर्थिक क्रियाओं से अर्जित आय की कुल मात्रा को राष्ट्रीय आय की संज्ञा दी जाती है , जिसमें सभी साधनों की दी गई मजदूरी , ब्याज , लगान एवं लाभ शामिल होते हैं।

किसी भी अर्थव्यवस्था में एक वर्ष के दौरान पूर्ण – निर्मित वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य राष्ट्रीय आय कहलाता है। उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं में कच्चा – माल मध्यवर्ती वस्तु कहलाता है, जिसके मूल्य को राष्ट्रीय में शामिल नहीं किया जाता है।

2.2 राष्ट्रीय आय की परिभाषाएँ

अर्थशास्त्रियों द्वारा समय – समय पर राष्ट्रीय आय को पारिभाषित किया जाता रहा है। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

2.2.1 मार्शल की परिभाषा–

मार्शल के अनुसार '' किसी एक देश का श्रम तथा पूँजी इसके प्राकृतिक साधनों का प्रयोग करके पदार्थों का कोई एक कुल जोड़ प्रतिवर्ष उत्पादन करते हैं; इस कुल जोड़ में भौतिक तथा अभौतिक पदार्थ, अर्थात सब प्रकार की सेवाएँ सम्मिलित होती हैं। यही जोड़ उस देश की सही वार्षिक आय है।''[1]

2.2.2 पीगू की परिभाषा–

पीगू ने जो परिभाषा प्रस्तुत की है , उसमें उसने उस आय को राष्ट्रीय आय माना जो मुद्रा में मापी जा सके। पीगू के अनुसार , '' राष्ट्रीय आय समुदाय की वस्तुपरक आय का वह भाग है जो मुद्रा में मापा जा सकता हो , और इस आय में विदेशों से प्राप्त आय भी सम्मिलित होती है।

2.2.3 फिशर की परिभाषा

फिशर के अनुसार, '' राष्ट्रीय लाभांश अथवा आय में केवल अन्तिम उपभोक्ताओं द्वारा प्राप्त सेवाएँ सम्मिलित होती हैं, चाहे वे भौतिक या मानवीय वातावरण से प्राप्त हों।'' इस प्रोफेसर फिशर ने यह स्पष्ट किया कि कोई भी वस्तु राष्ट्रीय आय में तभी शामिल होगी , जब वह उपयोगिता प्रदान करे।

2.2.4 आधुनिक दृष्टिकोण –

आधुनिक दृष्टिकोण से राष्ट्रीय आय की परिभाषा **साईमन कुजनेट्स ने** इन शब्दों में की है, ''राष्ट्रीय आय वस्तुओं तथा सेवाओं का वह शुद्ध उत्पादन है जो एक वर्ष की अवधि में देश की उत्पादन प्रणाली में अंतिम उपभोक्ताओं के हाथों में पहुँचता है।''

2.3 राष्ट्रीय आय की धारणाएँ–

राष्ट्रीय से सम्बद्ध कई अवधारणाएँ हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है–

(1) राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद {GDP(GROSS DOMESTIC PRODUCT)}:

एक वित्तीय वर्ष में किसी अर्थव्यवस्था में उतपादित समस्त अन्तिम पदार्थों तथा सेवाओं के मौद्रिक मूल्य का योग जिसमें विदेशों से अर्जित शुद्ध / निवल आय शामिल न हो , सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कहते हैं।

$$GDP = GNP – (X-M)$$

जहाँ GDP = **सकल घरेलू उत्पाद**
GNP= **सकल राष्ट्रीय उत्पाद**
X= निर्यात
M =आयात

(2) सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP):

एक वित्तीय वर्ष में किसी देश की भौगोलिक सीमा में, उस देश के नागरिकों के द्वारा उत्पादित समस्त अन्तिम वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रीक मूल्य का योग जिसमें विदेशों से अर्जित शुद्ध आय शामिल हो, उसे सकल राष्ट्रीय आय कहते हैं।

$$GNP = GDP + (X-M)$$

(3) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP):-

प्रत्येक वर्ष उत्पादन प्रक्रिया में पूँजीगत वस्तुओं एवं मशीनों में घिसावट होता रहता है, जिसे मूल्यह्रास कहते हैं। इस मूल्यह्रास को सकल राष्ट्रीय उत्पाद में से निकाल दिये जाने पर जो आय प्राप्त होती है, उसे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद कहते हैं।

शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = सकल राष्ट्रीय उत्पाद –मूल्यह्रास

या

$$NNP=GDP + (X-M) - P.D.$$

4. शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP):-

एक वित्तीय वर्ष में एक देश में नागरिकों के द्वारा उत्पादित समस्त अन्तिम वस्तुओं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य योग , जिसमें शुद्ध विदेशी आय और मूल्यह्रास शामिल न हो , उसे शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP) कहते हैं।

शुद्ध घरेलू उत्पाद = सकल घरेलू उत्पाद– मूल्यह्रास

या

$$NDP = GNP – (X-M) – P.D.$$

5. निजी आय (Private Income):-

निजी आय से अभिप्राय व्यक्तियों द्वारा उत्पादकीय या अन्य क्षेत्रों से प्राप्त तथा निगमों (कम्पनियों) द्वारा रखी आय से है।

निजी आय = राष्ट्रीय आय + हस्तांतरण भुगतान + सार्वजनिक ऋण पर ब्याज – सामाजिक सुरक्षा अंशदान – सार्वजनिक उपक्रमों के लाभ

6. वैयक्तिक आय (Personal Income):-

वैयक्तिक आय किसी देश में एक वर्ष में व्यक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष कर देने के पूर्व सभी स्त्रोतों से प्राप्त आय होती है।

वैयक्तिक आय = राष्ट्रीय आय – अवितरित निगम लाभ – लाभकर – सामाजिक सुरक्षा अंशदान +हस्तांरण भुगतान +सार्वजनिक ऋण पर ब्याज

7. प्रयोज्य आयः–

वह आय जो वैयाक्तिक आय में से प्रत्यक्षकर देने के बाद शेष बचती है, प्रयोज्य/व्यय योग्य आय कहलाती है।

प्रयोज्य आय = वैयाक्तिक आय–प्रत्यक्ष कर

या

प्रयोज्य आय = उपभोग व्यय + बचत

8. प्रति व्यक्ति आय (PCI) :

किसी देश की राष्ट्रीय आय में उस देश की कुल जनसंख्या से भाग देकर प्रतिव्यक्ति आय प्राप्त है प्रति–व्यक्ति आय में वृद्धि , देश के निवासियों की आर्थिक स्थिति या कल्याण में वुद्धि को दर्शाती है।

प्रति व्यक्ति आय = राष्ट्रीय आय/कुल जनसंख्या

2.4 साधन लागत एवं बाजार कीमत पर राष्ट्रीय आय :–

साधन लागत पर प्राप्त राष्ट्रीय आय को वास्तविक राष्ट्रीय आय कहते हैं। इसमें साब्सिडी शामिल होती है, जबकी अप्रत्यक्ष कर शामिल नहीं होता है।

$$NNP_{FC} = NNP_{MP} – I.T + Subsidy$$
$$= NNP_{MP} – Inflation$$

बाजार मूल्य पर राष्ट्रीय आय कौ मौद्रिक राष्ट्रीय आय कहते हैं इसमें अप्रत्यक्ष कर शामिल होता है और सब्सिडी शामिल नहीं होती है।

$$NNP_{MP} = NNP_{FC} + IT- Subsidy$$
$$= NNP_{FC} + Inflation.$$

वास्तविक राष्ट्रीय आय की गणना स्थिर कीमतों पर आधार वर्ष के अनुरूप होती है, जबकि मौद्रिक राष्ट्रीय आय की गणन चालू कीमत के आधार पर होती है।

2.5 राष्ट्रीय आय : मापन की विधियाँ

राष्ट्रीय आय की गणना में निम्नलिखित विधियाँ प्रयोग की जाती हैं–

2.5.1 आय विधि :–

अर्थव्यवस्था में आय विधि से राष्ट्रीय आय की गणना करते समय उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त सभी साधनों / स्त्रोतों को प्राप्त आय योग किया जाता है। जैसे मजदूरी, ब्याज ,लाभ , लगान , अवितरित निगम लाभ, लाभांश इत्यादि को जोड़ देते हैं।

राष्ट्रीय आय = Y= W+r+P+R+up+ mi

w= मजदूरी, r= ब्याज P = लाभ R= लगान up = अवितरित निगम लाभ mi = लाभांश

2.5.2 व्यय विधि :–

हमने राष्ट्रीय आय को अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं के मूल्य के रूप में व्यक्त किया अतः पदार्थों और सेवाओं का विक्रय मूल्य उनके क्रय हेतु किए गए व्यय के समान होगा , इस प्रकार हम राष्ट्रीय आय की गणना अर्थव्यवस्था में होने वाले सम्पूर्ण व्यय को जोड़कर कर सकते हैं। जैसे – उपभोग व्यय, सरकारी व्यय तथा शुद्ध विदेशी निवेश व्यय का योगात्मक मान।

यह अवधारणा इस मान्यता पर आधारित है कि राष्ट्रीय आय सदैव राष्ट्रीय व्यय के बराबर होती है।

$$Y = C + I + G + NX$$

C = निजी अन्तिम उपभोग व्यय ,

I = सकल निजी निवेश व्यय ,

G = सरकार द्वारा व्यय,

NX = निवल निर्यात

2.5.3 उत्पादन अथवा मूल्य – वृद्धि दृष्टिकोण :–

इस दृष्टिकोण में किसी वर्ष में अन्तिम वस्तुओं तथा सेवाओं के कुल उत्पादन के बाजार मूल्यों को जोड़कर सकल घरेलू उत्पाद या राष्ट्रीय की गणना की जाती है। इसके लिए मध्यवर्ती पदार्थों को दोहरी गिनती से बचाने के लिए शामिल नहीं किया जाता हैं। एक वस्तु के उत्पादन की अनेक अवस्थाएँ होती हैं। यदि उत्पादन की प्रत्येक अवस्था में हुई मूल्य – वृद्धि का योग किया जाए तो इससे हमें अन्तिम पदार्थों/सेवाओं के उत्पादन का मूल्य प्राप्त होता है।

राष्ट्रीय आय = कुल उत्पादन का मूल्य–मध्यवर्ती लागतें

मूल्य वृद्धि विधि से GDP के मापन को सरल बनाने हेतु हम अर्थव्यवस्था को कई क्षेत्रों (कृषि , लघु उद्यम , वाणिज्य , परिवहन आदि) में विभक्त करते है। इसके पश्चात विभिन्न क्षेत्रों के उत्पादक / फर्म द्वारा मूल्य वृद्धि को मालूम करने हेतु उस फर्म/ उद्योग में हुए कुल उत्पादन में से इस फर्म द्वारा अन्य उद्योगों या फर्मों से खरीदे गए पदार्थों के मूल्य को निकाल दिया जाता है ।

अंततः अर्थव्यवस्था के सभी उद्योगों /फर्मों में हुए उत्पादन में मूल्य – वृद्धि के समग्र योग से राष्ट्रीय उत्पादन/ आय ज्ञात किया जाता है।

फर्म के उत्पादन का मूल्य = विक्रय + स्टॉक वृद्धि

भारत ने 2014–15 से अपनी गणना प्रणाली में मूल्य –वृद्धि विधि को मूल कीमतों पर सकल मूल्य वृद्धि (GVA_{BP}) माना है।

$$GDP_{MP} = GVA_{BP} + \text{Indirect Taxes- Subsidies}$$

2.6 राष्ट्रीय आय के मापन में कठिनाइयाँ

राष्ट्रीय आय की माप एक जटिल प्रक्रिया है। इसमें उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को दो समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(अ) धारणात्मक समस्याएँ – हमने राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध में अनेक मान्यताओं / धारणाओं की चर्चा की , पर ये धारणाएँ कई प्रकार की धारणात्मक कठिनाइयों को जन्म देती हैं –

1. उत्पादक तथा अनुत्पादक क्रियाओं के बीच भेद सम्बन्धी कठिनाई।
2. अन्त्य तथा माध्यमिक वस्तुओं में अंतर करना कठिन।
3. बाजार में मुद्रा के माध्यम से न गुजरने वाली वस्तु के आरोपित मूल्य को ज्ञात करना कठिन।

(ब) सांख्यिकीय समस्याएँ –

अल्पविकसित देशों में राष्ट्रीय उत्पाद से सम्बन्धित पर्याप्त आँकड़े जैसे फसलों के उत्पादन , पशु– भण्डार , वन– उत्पाद आदि के आँकड़े विश्वसनीय नहीं होने तथा छोटे व्यापारियों द्वारा क्रय–विक्रय का लेखा जोखा नहीं लिखने के कारण राष्ट्रीय आय के मापन में सांख्यिकीय समस्यायें उत्पन्न होती हैं।

2.7 राष्ट्रीय आय तथा आार्थिक विकास

राष्ट्रीय आय किसी अर्थव्यवस्था द्वारा एक वित्तीय वर्ष में उत्पादित समग्र वस्तुओं – सेवाओं की माप या लेखा–जोखा से सम्बन्धित है। राष्ट्रीय आय लेखांकन के द्वारा अर्थव्यवस्था के निष्पादन तथा आर्थिक उपलब्धियों की रूपरेखा प्रस्तुत की जाती है। किसी देश के आर्थिक विकास में राष्ट्रीय आय के विश्लेषण का अत्यधिक महत्व है। राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित आँकड़े नीतियों के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

राष्ट्रीय आय समिति की रिपोर्ट के अनुसार , '' राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित आंकड़े किसी देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में तथा उन विभिन्न समूहों के सम्बन्ध में जो उसमें उत्पादक तथा आय के प्राप्तकर्ता के रूप में भाग लेते हैं, विस्तृत झाँकी प्रस्तुत करते हैं , तथा यदि ये आँकड़े पर्याप्त समय के लिए उपलब्ध हों तो वे किसी अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में भूतकाल में हुए महत्वपूर्ण परिवर्तनों को प्रदर्शित करते हैं तथा भविष्य में होने वाले परिवर्तनों की दिशा तथा प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हैं। ''

राष्ट्रीय आय तथा सम्बन्धित आंकड़ों का आर्थिक विकास में निम्नलिखित महत्व है–

- आर्थिक प्रगति का आभास।
- अन्तर्राष्ट्रीय तुलान्मक समीक्षा।
- अर्थव्यवस्था के अन्तर्क्षेत्रीय विकास की तुलानत्मक समीक्षा।
- आय के अन्तर्वर्गीय विभाजन का तुलनात्मक अध्ययन।
- सरकारी नीतियों का मूल्यांकन तथा निर्धारण।
- योजनाओं में हुई प्रगति का मूल्यांकन।

2.8 बोध प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय से आप क्या समझते हैं?
2. वास्तविक राष्ट्रीय आय क्या होती है?
3. आय विधि से राष्ट्रीय आय मापन का आधार क्या है?

2.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद हमने राष्ट्रीय आय की विभिन्न परिभाषा, धारणा तथा मापन की विभिन्न विधियों की जानकारी प्राप्त की।

2.10 शब्दावली

वैयक्तिक आय (Personal Income) - वैयक्तिक आय किसी देश में एक वर्ष में व्यक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष कर देने के पूर्व सभी स्त्रोतों से प्राप्त आय होती है।

प्रयोज्य आय - वह आय जो वैयाक्तिक आय में से प्रत्यक्षकर देने के बाद शेष बचती है, प्रयोज्य/व्यय योग्य आय कहलाती है।

2.11 संदर्भ

1. MACROECONOMICS: THEROY AND POLICY, D.N. DWIVEDI
2. उच्चतर समष्टि अर्थशास्त्र — **एच. एल. आहूजा**
3. समष्टिभावी आर्थिक विश्लेषण — **एस. एन. लाल**

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 उत्तर – राष्ट्रीय आय से अभिप्राय , साधारण शब्दों में किसी देश में एक वर्ष में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के कुल मूल्य से है। अन्य शब्दों में एक देश में वर्ष भर में आर्थिक क्रियाओं से अर्जित आय की कुल मात्रा को राष्ट्रीय आय की संज्ञा दी जाती है , जिसमें सभी साधनों की दी गई मजदूरी , ब्याज , लगान एवं लाभ शामिल होते हैं।

2 उत्तर – साधन लागत पर प्राप्त राष्ट्रीय आय को वास्तविक राष्ट्रीय आय कहते हैं। इसमें साब्सिडी शामिल होती है, जबकी अप्रत्यक्ष कर शामिल नहीं होता है।

3 उत्तर – अर्थव्यवस्था में आय विधि से राष्ट्रीय आय की गणना करते समय उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त सभी साधनों / स्त्रोतों को प्राप्त आय योग किया जाता है। जैसे मजदूरी, ब्याज ,लाभ , लगान , अवितरित निगम लाभ, लाभांश इत्यादि को जोड़ देते हैं।

2.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सकल घरेलू उत्पाद तथा सकल राष्ट्रीय उत्पाद में क्या अंतर है?
2. शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद क्या होता है?
3. राष्ट्रीय आय के मापन की आय एवं व्यय विधि की व्याख्या करिये।

4. राष्ट्रीय आय के मापन में आने वाली कठिनाइयों को लिखिये।

5. राष्ट्रीय आय मापन की मूल्य वृद्धि विधि बताइये

खण्ड – 1

इकाई –3

उपभोक्ता का संतुलन (Consumer's Equilibrium)

इकाई की रुपरेखा (Unit Plan)

3.0 उद्देश्य **(Objectives)**

3.1 प्रस्तावना **(Introduction)**

3.2 मान्यताएँ **(Assumptions)**

3.3 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम **(Law of Diminishing Utility)**

3.4 उपभोक्ता का संतुलन **(Consumer's Equilibrium)**

3.5 माँग वक्र की व्युत्पत्ति **(Derivation of Demand Curve)**

3.6 बोध प्रश्न **(Basic Questions)**

3.7 सारांश **(Summary)**

3.8 शब्दावली **(Key Words)**

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर **((Answers to the Basic Questions)**

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न **(Questions for Exercise)**

3.11 संदर्भ ग्रंथ **(Bibliography)**

3.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेंगे कि

1. उपभोक्ता संतुलन क्या होता है?
2. उपभोक्ता संतुलन कैसे प्राप्त किया जाता है?
3. माँग वक्र की व्युत्पत्ति कैसे होती है?

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

चूँकि उपभोक्ता ही किसी वस्तु की माँग करता है इसलिए माँग के नियम की व्याख्या करने के लिए उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। आर्थिक विश्लेषण में संतुलन या संस्थिति की धारणा का बहुत अधिक महत्व है। आर्थिक सिद्धान्तों के सन्दर्भ में यह धारणा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्रत्येक उपभोक्ता के सामने सबसे प्रमुख समस्या अपने सीमित साधनों को विभिन्न प्रयोगों या विभिन्न वस्तुओं के क्रय के सम्बन्ध में इस प्रकार से बँटवारे की होती है, जिससे उसे अधिकतम सन्तुष्टि की स्थिति प्राप्त हो सके। यह अधिकतम संतुष्टि की स्थिति ही उपभोक्ता की संतुलन स्थिति होती हैं।

3.2 मान्यताएँ (Assumptions)

मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

1. उपभोक्ता विवकेशील है। यहाँ उपभोक्ता के विवकेशील होने का अर्थ यह है कि उपभोक्ता अपनी दी हुयी आय को विभिन्न वस्तुओं पर इस तरह से खर्च करना चाहता है कि उससे उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो सके।
2. इसके पास साधन/आय सीमित व ज्ञात है।
3. वस्तुओं की कीमतें बाजार में ज्ञात होती है।
4. उपभोगिता की संख्यात्मक माप सम्भव है।
5. उपयोगति को मुद्रा में भी मापा जा सकता है।
6. क्रमागत उपयोगिता हास नियम का क्रियाशीलन।
7. मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर है।
8. विभिन्न वस्तु समूह से प्राप्त होने वाली उपयोगिता अलग – अलग वस्तुओं की मात्राओं पर निर्भर करती है।
9. यह दृष्टिकोण अंतःमनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है।

3.3 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing Marginal Utility)

मार्शल की उपयोगति विश्लेषण में सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम की महत्वपूर्ण भूमिका है। किसी वस्तु की अंतिम इकाई के उपभोग से मिलने वाली उपयोगति को सीमांत उपयोगिता कहते हैं। दूसरे शब्दों में किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाई के उपभोग के कारण कुल उपयोगति में होने वाले परिवर्तन को सीमांत उपयोगति कहते हैं। प्रायः ऐसा सोंचा जाता है कि जब उपभोक्ता किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों क उपभोग करता जाता है तो एक सीमा के बाद उसके लिए उस वस्तु की उपभोग करने की इच्छा की तीव्रता कम होने लगती है। सरल शब्दों में कहें तो जब उपभेक्ता किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग करता है तब अंततः उससे मिलने वाली सीमांत उपयोगति क्रमशः घटती जाती है। इस घटना को अर्थशास्त्र में सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम के रूप में जाना जाता है।

सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम की तालिका द्वारा स्पष्टीकरण

तालिका संख्या (3.1): कुल उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता का विवरण।

उपभोग की इकाइयाँ	कुल उपयोगिता (यूटिल्स)	सीमांत उपयोगिता (यूटिल्स)
0	0	0
1	30	30
2	70	40
3	105	35
4	130	25
5	140	10
6	140	0

उपरोक्त तालिका में स्पष्ट है कि जब वस्तु का उपयोग नहीं हो रहा है तब उससे मिलने वाली कुल उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता शून्य है। वस्तु की प्रथम इकाई के उपभोग से उपभोक्ता का 3 यूटिल्स उपयोगिता मिलती है। यहाँ कुल उपयोगिता में परिवर्तन यानि सीमांत उपयोगिता का मान भी 30 यूटिल्स है। जब उपभोक्ता वस्तु की दूसरी इकाई का उपभोग करता है तब उसकी कुल उपयोगिता बढ़कर 70 यूटिल्स हो जाती है। यानि सीमांत उपयोगिता 40 यूटिल्स है। इसी तरह से वस्तु की तीसरी इकाई से पाप्त सीमांत उपयोगिता 35 यूटिल्स, चौथी इकाई से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता 25 यूटिल्स, पांचवीं इकाई से प्राप्त सीमांत उपयोगिता 10 यूटिल्स तथा छठी इकाई से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता शून्य यूटिल्स है। कोई भी विवकेशील उपभोक्ता इस वस्तु की और अधिक मात्रा का उपभोग नहीं करेगा क्योंकि इससे मिलने वाली सीमांत उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है।

नोटः उपरोक्त तालिका में स्पष्ट है कि वस्तु की तीसरी इकाई के उपभोग से सीमांत उपयोगिता घटने लगती है। इससे सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम की पुष्टि होती है।

सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम की रेखाचित्र द्वारा स्पष्टीकरण

रेखाचित्र संख्या (3.1): कुल उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता का रेखाचित्र

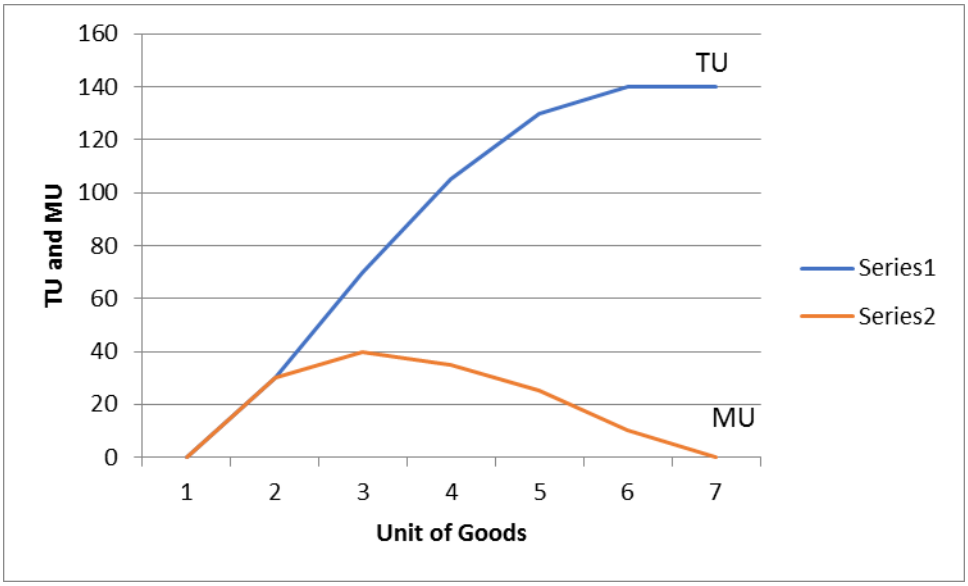

चित्र संख्या 3.1

उपरोक्त तालिका 3.1 में दिए गए समंकों का चित्रमय प्रदर्शन चित्र संख्या 3.1 में किया गया है। चित्र में समानान्तर/क्षैतिज अक्ष पर उपभोग की इकाइयों को तथा उदग्र अक्ष पर कुल उपयोगिता (Total Utility) और सीमांत उपयोगिता (Marginal Utility) को दर्शाया गया है।चित्र से स्पष्ट है कि प्रारम्भ में सीमांत उपयोगिता बढ़ती है परन्तु एक सीमा के बाद क्रमशः घटने लगती है। जब सीमांत उपयोगिता शून्य हो जाती है तब कुल उपयोगिता अधिकतम होती है। इसके बाद भी अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग किये जाने पर सीमांत उपयोगिता ऋणात्मक तथा कुल उपयोगिता घटने लगती है।

3.4 उपभोक्ता का संतुलन

उपभोक्ता के संतुलन की व्याख्या , सम –सीमांत उपयोगिता नियम के द्वारा की जाती है, जिसका प्रतिपादन प्रो0 मार्शल ने किया । इसे गॉसेन का द्वितीय नियम भी कहते हैं।

इसके अनुसार – ''कोई भी उपभोक्ता सदैव अपनी संतुष्टि को अधिकतम करना चाहता है अतः वह कम उपयोगिता देने वाले उपभोग के स्थान पर अधिक उपयोगिता देने वाले उपभोग को तब तक प्रतिस्थापित करता है, जब तक उसे संस्थिति/सन्तुलन की स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती। दूसरे शब्दों में उपभोक्ता अपनी दी हुयी आय और वस्तुओं की तय कीमतों पर विभिन्न वस्तुओं को उतनी मात्रा में क्रय करना चाहता है जिससे उसको प्राप्त होने वाली समस्त उपयोगिता अधिकतम हो जाए।

एक वस्तु की स्थिति में उपभोक्ता संतुलन की शर्तः

जब उपभोक्ता अपनी दी हुयी आय से केवल एक वस्तु का क्रय करता है तब वह उस वस्तु की उतनी मात्राा का क्रय करता है जब वस्तु से प्राप्त सीमांत उपयोगिता और वस्तु की कीमत समान हो जाती है। अर्थात

$MU_x = P_x$

जहाँ MU_x वस्तु से प्राप्त सीमांत उपयोगिता तथा P_x वस्तु की कीमत है।

एक वस्तु के संदर्भ में उपभोक्ता के संतुलन की शर्त को निम्नलिखित रेखाचित्र में दिखाया गया है–

चित्र संख्या– 2: एक वस्तु के संदर्भ में उपभोक्ता संतुलन का प्रदर्शन

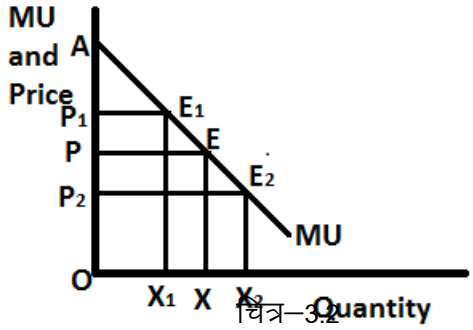

चित्र–3.2

उपरोक्त चित्र संख्या 2 में क्षेतिज अक्ष पर वस्तु की मात्राा को तथ्ज्ञा उदग्र अक्ष पर सीमांत उपयोगिता और वस्तु की कीमत स्तर को प्रदर्शित किया गया है। MU रेखा सीमांत उपयोगिता की रेखा है जो सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम के कारण वायें से दायें ऊपर से नीचे की ओर गिर रही है। चित्र से स्पष्ट है कि वस्तु की अलग अलग कीमतों पर उपभोक्ता सीमांत उपयोगिता रेखा के अलग अलग बिन्दुओं पर संतुलन की स्थिति में है। जब कीतम P है तब उपभोक्ता E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है तथा इस स्थिति में वस्तु की X मात्रा का क्रय करता है। जब कीतम P_1 है तब उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है तथा इस स्थिति में वस्तु की X_1 मात्रा का क्रय करता है। जब कीतम P_2 है तब उपभोक्ता E_2 बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है तथा इस स्थिति में वस्तु की X_2 मात्रा का क्रय करता है।

दो या दो से अधिक वस्तओुं की स्थिति में उपभोक्ता संतुलन की शर्तः

दो या दो से अधिक वस्तुओं के संदर्भ में उपभोक्ता संतुलन की शतै को गणितय विधियों के प्रयोग से स्थापित किया जाता है। ऐसी सिथिति में उपभोक्ता x वस्तु की सीमान्त उपयोगिता एवं उसके मूल्य का अनुपात तथा y वस्तू की सीमान्त उपयोगिता तथा उसके मूल्य का अनुपात की तुलना करता है।

x वस्तु के लिये = MU_x / p_x

y वस्तु के लिये = MU_y / p_y

उपभोक्ता संतुलन की स्थिति में $MU_x / P_x = MU_y / P_y$ होगा।

दोनों पक्षों में असंतुलन की स्थिति में उपभोक्ता तदनुसार संयोजन करेगा जब तक कि $MU_x / P_x = MU_y / P_y$ न हो जाये। मार्शल ने माना कि उपभोग क्रिया में मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर रहेगी।

$$\boxed{MU_x / P_x = MU_y / P_y = MU_m}$$

दो से अधिक वस्तुओं के लिये –

$$\boxed{MU_x / P_x = MU_y / P_y = \text{----------} MU_n / P_n = MU_m}$$

उपरोक्त स्थिति ही उपभोक्ता संतुलन की शर्त हैं। विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त सीमांत उपयोगिता समान होने के कारण इसे सम– सीमांत उपयोगिता का सिद्धान्त भी कहते हैं।

3.5 माँग वक्र की व्युत्पत्ति (Derivation of Demand Curve)

उपभोक्ता के व्यवहार का अध्ययन करने का मुख्य उद्देश्य माँग के नियम की व्युत्पत्ति करना है। माँग का नियम तथा माँग की रेखा/वक्र की व्युत्पत्ति उपभोक्ता के संतुलन के आधार पर की जाती है। सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम से हमें ज्ञात है कि उपभोक्ता जैसे जैसे किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग करता है उससे मिले वाली सीमांत उपयोगिता कम होने लगती है। दूसरी ओर उपभोक्ता के संतुलन की शर्त से हमें यह भी ज्ञात है कि उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए उससे मिलने वाली सीमांत उपयोगिता के बराबर ही कीमत देने के लिए तैयार होता है। इस प्रकार उपभोक्ता कम सीमांत उपयोगिता और कीमत पर वसतु की अधिक मात्राा का क्रय करता है तथ इसके विपरित अधिक सीमांत उपयोगिता और कीमत पर कम मात्रा का क्रय करता है। अर्थात किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँग की मात्रा के बीच विपरित सम्बंध पाये जाते हैं।

माँग के नियम अथवा माँग वक्र की रेखाचित्र द्वारा व्युत्पत्ति

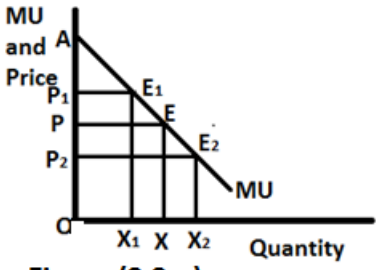

Figure (3.3-a)

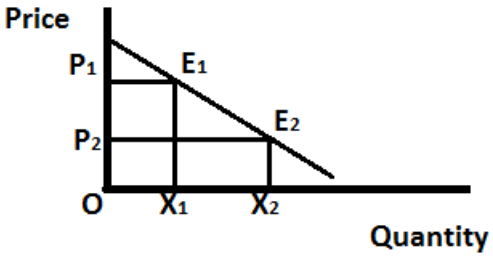

Figure (3.3-b)

उपरोक्त चित्र के दो भाग हैं: 3.3-a तथा 3.3-b

चित्र 3.3-a में उपभोक्ता के संतुलन को दर्शाया गया है। चित्र 3.3-b में माँग वक्र की व्युत्पत्ति की गयी है। दोनों चित्रों में क्षैतिज अक्ष पर वस्तु की मात्रा को दर्शाया गया है तथा दोनों चित्रों में क्षैतिज अक्ष का पैमाना भी समान रखा गया है। ऊपर के भाग में उदग्र अक्ष पर वस्तु की कीमत तथा वस्तु से प्राप्त सीमांत उपयोगिता को दर्शाया गया है। नीचे के भाग में उदग्र अक्ष पर वस्तु की कीमत को दर्शाया गया है। चित्र 3.3-b से स्पष्ट है कि जब वस्तु की कीमत P_1 है तब माँग की मात्रा X_1 है। जब वस्तू की कीमत घटकर हो P_2जाती है तब जाती है तब वस्तु की माँग बढ़कर X_2 हो जाती है। अर्थात वस्तु की कीमत एवं माँग की मात्रा में विपरित सम्बंध पाया जाता है। यही माँग का नियम कहलाता है।

3.6 बोघ प्रश्न (Basic Questions)

1.उपभोक्ता संतुलन से आप क्या समझते हैं?

2. सम सीमांत उपयोगिता नियम का प्रतिपादन किसने किया?

3.7 सारांश (Summary)

उपभोक्ता के संतुलन की व्याख्या , सम –सीमांत उपयोगिता नियम के द्वारा की जाती है, जिसका प्रतिपादन प्रो0 मार्शल ने किया । इसे गॉसेन का द्वितीय नियम भी कहते हैं। कोई भी उपभोक्ता सदैव अपनी संतुष्टि को अधिकतम करना चाहता है अतः वह कम उपयोगिता देने वाले उपभोग के स्थान पर अधिक उपयोगिता देने वाले उपभोग को तब तक प्रतिस्थापित करता है, जब तक उसे संस्थिति/ सन्तुलन की स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती।

3.8 शब्दावली (Key Words)

संतुलन – उपभोक्ता के संतुष्ट होने की स्थिति

उपयोगिता – इच्छाओं को पूर्ण करने की क्षमता

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर (Answers to the basic Questions)

1 उत्तर – अधिकतम संतुष्टि की स्थिति ही उपभोक्ता की संतुलन स्थिति होती हैं।

2 उत्तर – सम सीमांत उपयोगिता नियम का प्रतिपादन प्रो0 मार्शल ने किया ।

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न (Questions for Excercise)

- उपभोक्ता संतुलन की मान्यताओं का उल्लेख करते हुए इसकी विस्तृत व्याख्या कीजिये।
- सीमांत उपयोगिता से आप क्या समझते हैं?
- सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम की व्याख्या करें।
- उपभोक्ता संतुलन की व्याख्या करें
- उपभोक्ता संतुलन की शर्तों से माँग वक्र की व्युत्पत्ति करें।

3.11 संदर्भ ग्रंथ (Bibliograpphy)

1. Microeconomic Theory — A.P. Lerner
2. A Revision of Demand Theory — J.R. Hicks
3. Measurement of Utility — Tapas Majumdar

खण्ड – 1

इकाई – 4

उपयोगिता का गणनावाचक एवं क्रमवाचक दृष्टिकोण एवं व्यवहारवादी विश्लेषण ,उदासीनता वक्र – विश्लेषण, प्रकटित अधिमान सिद्धान्त , उपभोक्ता का संतुलन(हिक्स एवं स्लट्स्की)

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 उपयोगिता का गणनावाचक दृष्टिकोण

4.2.1 कुल उपयोगिता

4.2.2 अैसत उपयोगिता

4.2.3 सीमान्त उपयोगिता

4.3 कुल उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता के बीच सम्बन्ध

4.4 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम

4.5 उपयोगिता का क्रमवाचक दृष्टिकोण

4.6 उदासीनता वक्र विश्लेषण

4.6.1 उदासीनता (अनधिमान) वक्र का अर्थ

4.6.2 मान्यतायें

4.6.3 उदासीनता वक्र की विशेषतायें

4.6.4 प्रतिस्थापन की सीमांत दर

4.7 बजट रेखा

4.8 उपभोक्ता का संतुलन

4.9 उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण

4.9.1 मौद्रिक आय में परिवर्तन का प्रभाव

4.9.2 मूल्य में परिवर्तन का प्रभाव

4.10 हिक्स का दृष्टिकोण : कीमत प्रभाव का विभाजन

4.11 स्लट्स्की दृष्टिकोण

4.12 प्रकटित अधिमान सिद्धान्त

4.13 प्रकटित अधिमान दृष्टिकोण तथा मांग विश्लेषण

4.14 बोध प्रश्न

4.15 सारांश

4.16 शब्दावली

4.17 संदर्भ ग्रंथ

4.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.19 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेंगे कि –

- उपयोगिता का गणनावाचक तथा क्रमवाचक दृष्टिकोण
- उदासीनता वक्र विश्लेषण
- बजट रेखा तथा उपभोक्ता का संतुलन
- उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण
- हिक्स तथा स्लट्स्की का दृष्टिकोण : कीमत प्रभाव का विभाजन
- प्रकटित अधिमान दृष्टिकोण तथा मांग विश्लेषण

4.1 प्रस्तावना

एक उपभोक्ता द्वारा अपनी आवश्यकता को संतुष्ट करने की क्रिया उपभोग हैं तथा उसकी आवश्यकता को संतुष्ट करने वस्तु की क्षमता को उपयोगिता कहते हैं। उपयोगिता की माप के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण पाये जाते हैं– गणनावाचक दृष्टिकोण तथा क्रमावाचक दृष्टिकोण। संख्या वाची दृष्टिकोण के अनुसार किसी वस्तु की उपयोगिता को संख्यात्मक मानों में व्यक्त किया जा सकता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों – हिक्स, एलेन, पैरेटो आदि ने उपयोगिता को मनोवैज्ञानिक एवं व्यक्तिनिष्ठ विचार माना और बताया कि इसकी संख्यावाची माप सम्भव नहीं है। उपयोगिता के क्रमवाची माप पर आधारित अनधिमान वक्र का विश्लेषण 1934 में हिक्स ने अपनी पुस्तक Value and Capital में किया।

4.2 उपयोगिता का गणनावाचक दृष्टिकोण

इसका प्रतिपादन प्रो0 मार्शल ने किया । मार्शल के अनुसार उपयोगिता के एक मनोवैज्ञानिक तथ्य होने के बावजूद भी इसे मुद्रा के द्वारा मापा जा सकता है। किसी वस्तु का मुल्य हम इसलिये देते हैं क्योंकि उस वस्तु में उपयोगिता पायी जाती हैं। इस प्रकार किसी वस्तु के बदले दिया जाने वाला मूल्य ही उस वस्तु की उपयोगिता है। संख्या वाची दृष्टिकोण के अनुसार किसी वस्तु की उपयोगिता को संख्यात्मक मानों (5, 10, 12.. ..) में व्यक्त किया जा सकता है। गणनावाची / संख्यावाची दृष्टिकोण में प्रयुक्त प्रमुख धारणायें निम्नलिखित हैं–

4.2.1 कुल उपयोगिता –

एक निश्चित समय में निश्चित वस्तु के उपभोग से प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं का योग ही कुल उपयोगिता है। उपभोग क्रिया में पहली इकाई के उपभोग से लेकर अन्तिम इकाई के उपभोग तक प्रत्येक इकाई से मिलने वाली उयोगिताओं का योग ही कुल उपयोगिता है।

कुल उपयोगिता = वस्तु इकाई की संख्या × औसत उपयोगिता

4.2.2 औसत उपयोगिता –

प्रति इकाई वस्तुओं के उपभोग से प्राप्त होने वाली उपयोगिता ही औसत उपयोगिता है।

$$A.U = T.U./X$$

4.2.3 सीमान्त उपयोगिता –

किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उपभोग से कुल उपयोगिता में होने वाली वृद्धि ही सीमान्त उपयोगिता है।

$$MU = TU_n - TU_{n-1}$$

चूँकि प्रत्येक इकाई के उपभोग के ह्रास कुल उपयोगिता में होने वाली वृद्धि सीमान्त उपयोगिता है, अतः कुल उपयोगिता (TU) वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर ढाल उससे सम्बन्धित उपभोग की गयी वस्तु के लिये सीमान्त उपयोगिता का व्यक्त करेगा

4.3 कुल उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता के बीच सम्बन्ध

उपभोग में वृद्धि के साथ कुल उपयोगिता में क्रमशः वृद्धि होती है तथा एक स्तर को प्राप्त करके कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है तथा उसके बाद यह कम होती है परन्तु ऋणात्मक नहीं होती है।

सीमान्त उपयोगिता उपभोग क्रिया के साथ क्रमशः घटती जाती है। और अधिकतम संतुष्टि के स्तर पर पहुँच कर सीमान्त उपयोगिता शून्य हो जाती है। सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक भी हो सकती है।

कुल उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता के बीच एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध यह है कि अधिकतम संतुष्टि के स्तर पर जब कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है, तो सीमान्त उपयोगिता शून्य रहती हैं तथा इस बिन्दु के बाद जब कुल सीमान्त उपयोगिता घटती है तो सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है। जैसा निम्न रेखाचित्र में व्यक्त है–

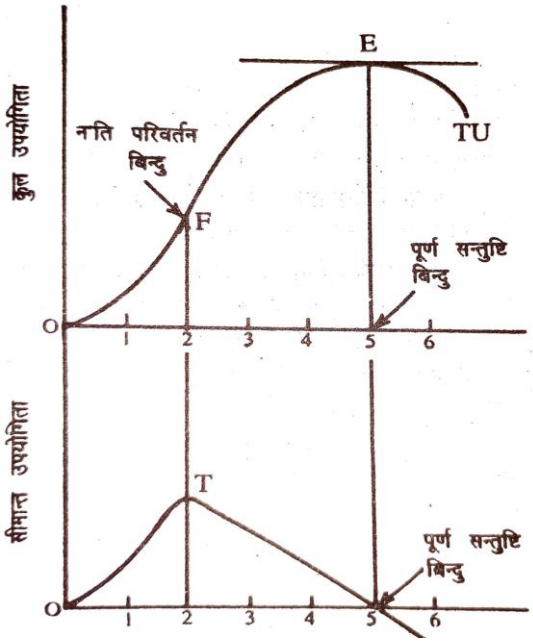

रेखाचित्र - 4.1

4.4 सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम

इस नियम के अनुसार हम जैसे– जैसे किसी वस्तु का उपभोग बढ़ाते जाते हैं उसकी बढ़ती इकाईयों से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है।

मार्शल के अनुसार –

अन्य बातों के समान रहने पर किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु के स्टॉक में वृद्धि होने से जो उपयोगिता प्राप्त होती है, उस वस्तु की मात्रा की प्रत्येक इकाई बढ़ने के साथ–साथ उपयोगिता घटती जाती है।''

इस नियम की मान्यतायें हैं, जैसे – उपभोक्ता एक विवेकशील प्राणी है, उपभोग की क्रिया निरन्तर चलती है, प्रत्येक इकाई सभांग प्रवृति की है, उपभोग अवधि में उपभोक्ता की आय , रूचि, आदत, इत्यादी समान हैं , तथा मुद्रा का मूल्य एवं मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर है।

4.5 उपयोगिता का क्रमवाचक दृष्टिकोण

आधुनिक अर्थशास्त्रियों – हिक्स, एलेन, पैरेटो आदि ने उपयोगिता को मनोवैज्ञानिक एवं व्यक्तिनिष्ठ विचार माना और बताया कि इसकी संख्यावाची माप सम्भव नहीं है। इनके अनुसार उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक धारणा है, जो भूख की तीव्रता पर निर्भर करती है तथा इस विधि के अनुसार उपयोगिता या संतुष्टि का स्तर मात्र व्यक्त किया जा सकता है, मापा नहीं जा सकता। किसी वस्तु के प्रयोग से प्राप्त होने वाली उपयोगिता को वरीयमान क्रमों 1,2,3,4,5––––––––n में व्यक्त करते हैं। यह एक निरपेक्ष विधि है।

4.6 उदासीनता वक्र विश्लेषण

इसका सर्वप्रथम प्रतिपादन 1881 में एफ0 वाई0 एजवर्थ ने किया , जो उपयोगिता की संख्यावाची माप पर आधारित था, लेकिन बाद में उपयोगिता के क्रमवाची माप पर आधारित अनधिमान वक्र का विश्लेषण 1934 में हिक्स ने अपनी पुस्तक Value and Capital में किया।

4.6.1 उदासीनता (अनधिमान) वक्र का अर्थ

दो या दो से अधिक वस्तुओं एवं सेवाओं के ऐसे संयोगों या युग्मों को प्रदर्शित करने वाला वक्र जिससे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त हो , उसे उदासीनता वक्र या अनधिमान वक्र कहते हैं।

संयोग		उपयोगिता
वस्तु 'x'की संख्या	वस्तु 'y'की संख्या	
1x	15y	100(A)
2x	8y	100(B)
3x	5y	100(C)
4x	3y	100(D)
5x	2y	

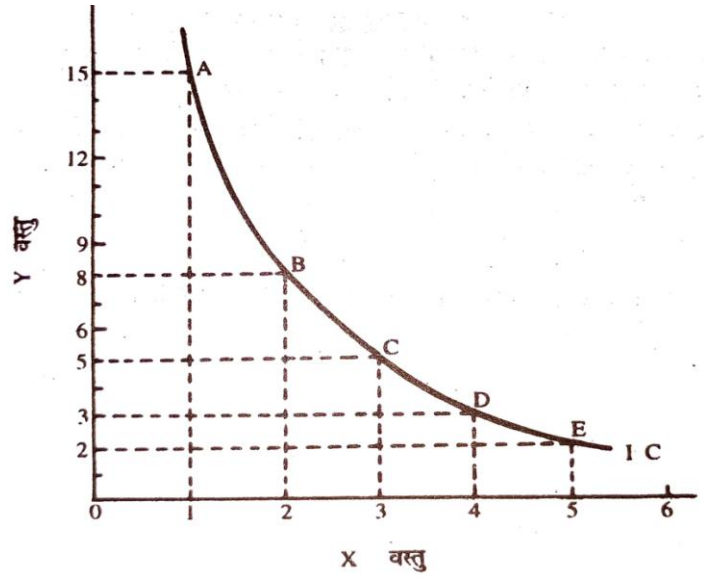

रेखाचित्र - 4.2

4.6.2 मान्यतायें

(i) उपभोक्ता एक विवेकशील प्राणी है।
(ii) उपयोगिता की क्रमवाची अवधारणा है।
(iii) निर्बल क्रमबद्धता।
(iv) प्रतिस्थापन की घटती हुई सीमान्त दर।
(v) स्थिरता की मान्यता ।
(vi) सकर्मकता की मान्यता।
(vii) उपयोगिता वस्तु की मात्रा पर निर्भर है।

4.6.3 उदासीनता वक्र की विशेषतायें–

(1) अधिमान वक्र का दाल ऋणात्मक होता है।
(2) यह वक्र मूल बिन्दु की ओर उन्नतोवर होता है।
(3) उच्च उदासीनता वक्र, ऊँची सन्तुष्टि दर्शाता है।
(4) दो उदासीनता वक्र, एक दूसरे को परस्पर प्रतिच्छेदित नहीं करते हैं।
(5) प्रतिस्थापन की सीमान्त दर घटती हुई होती है।

4.6.4 प्रतिस्थापन की सीमांत दर–

वस्तु x की वस्तु y के लिये प्रतिस्थापन की सीमांत दर वस्तु y की वह माना है, जिसको वस्तु x की एक अतिरिक्त इकाई को उपभोग में लाने के लिये उपभोक्ता त्याग देता है। दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन की सीमांत दर उनके सीमांत उपयोगिता के अनुपात के बराबर होता है। प्रतिस्थापन की सीमांत दर किसी विशेष बिन्दु पर उदासीनता वक्र की ढाल को व्यक्त करता है।

$$MRSxy = \frac{\Delta y}{\Delta x} = \frac{MUx}{MUy}$$

4.7 बजट रेखा

बजट रेखा दो वस्तुओं के उन सभी संयोगों को प्रदर्शित करती है, जिन्हें एक उभोक्ता अपनी दी हुई मौद्रिक आय को दो वस्तुओं की दी हुई कीमतों पर व्यय करके खरीद सकता है।

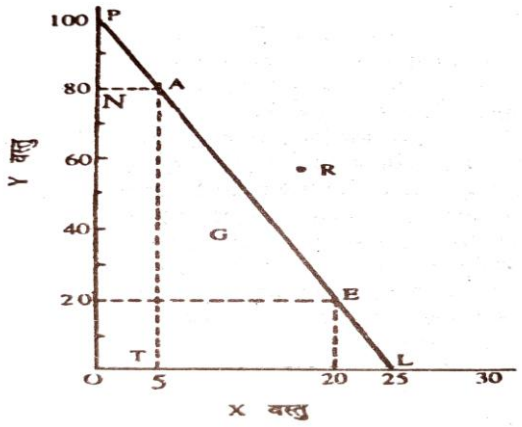

रेखाचित्र - 4.3

4.8 उपभोक्ता का संतुलन [Consumer's Equilirium]

बजट रेखा एवं उदासीनता वक्र की सहायता से एक उपभोक्ता संतुलन की स्थिति में उस बिन्दु पर होगा, जहाँ पर निम्नलिखित शर्तें पूरी हो रही हों –

[1] अनधिमान / उदासीनता वक्र का ढाल बजट रेखा के ढाल के बराबर हो।

[2] उदासीनता वक्र, बजट रखा को स्पर्श करता हो।

[3] जहाँ पर $\frac{Py}{P_x} = \frac{MUx}{MU_x} = MRSxy$ (ऋणात्मक) की शर्त पूर्ण हो।

उपरोक्त स्थितियाँ उपभोक्ता के संतुलन की आवश्यक शर्तें हैं, पर्याप्त नहीं। पर्याप्त शर्त यह है कि उदासीनता वक्र मूल बिन्दु के प्रति उन्नोतर (उतल) हो।

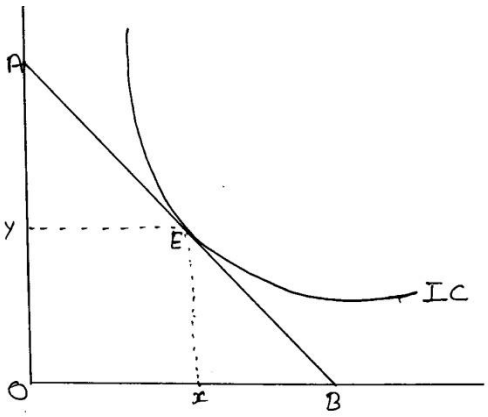

रेखाचित्र - 4.4

E बिन्दु पर

$P_y \quad MU_y$

एक उपभोक्ता सदैव E बिन्दु पर संतुलन में होगा , जहाँ पर सभी आवश्यक एवं पर्याप्त शर्तें पूर्ण हो रही हैं, जो उपभोक्ता के सन्तुलन से सम्बन्धित है। संतुलन बिन्दु E पर उपभोक्ता सदैव सन्तुष्टि के उच्चतम स्तर को प्राप्त करेगा।

4.9 उपभोक्ता व्यवहार का विश्लेषण

4.9.1 मौद्रिक आय में परिवर्तन का प्रभाव–

अन्य बातों के समान रहने पर (xतथा y वस्तु की कीमतों के स्थिर रहने पर) उपभोक्ता के मैद्रिक आय में परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तुओं की माँग या उपभोग पर पड़ने वाले प्रभाव को ही मौद्रिक आय अन्य प्रभाव कहते हैं। इसका विश्लेषण ' आय उपभोग वक्र ' (ICC) के माध्यम से करते हैं।

वस्तुओ के मूल्य स्थिर रहने की अवस्था में उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि उसकी क्रयशक्ति में वृद्धि कर देती है, फलस्वरूप बजट रेखा पूर्व स्थिति के समानान्तर ऊपर की ओर विवर्तित हो जाती है, जो यह प्रदर्शित करती है , कि उपभोक्ता पहले की अपेक्षाा दोनों वस्तुओं की अधिक मात्रा क्रय कर सकता है।

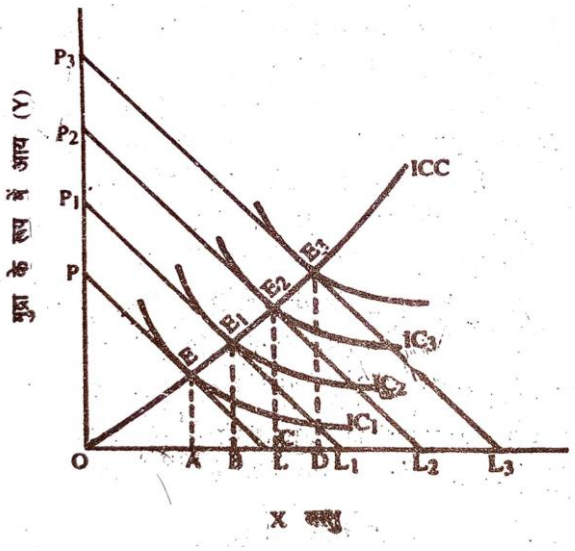

रेखाचित्र - 4.5

मौद्रिक आय में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप संतुलन बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा को आय उपभोग वक्र कहते हैं।

निकृष्ट वस्तुओं के संदर्भ में आय उपभोग वक्र–

(i) **यदि x वस्तु निकृष्ण तथा y वस्तु सामान्य हो–** मौद्रिक आय में वृद्धि होने पर x वस्तु की माँग पहले से कम हो जायेगी तथा y वस्तु की मांग पूर्व की तुलना मे अधिक हो जाती है ।

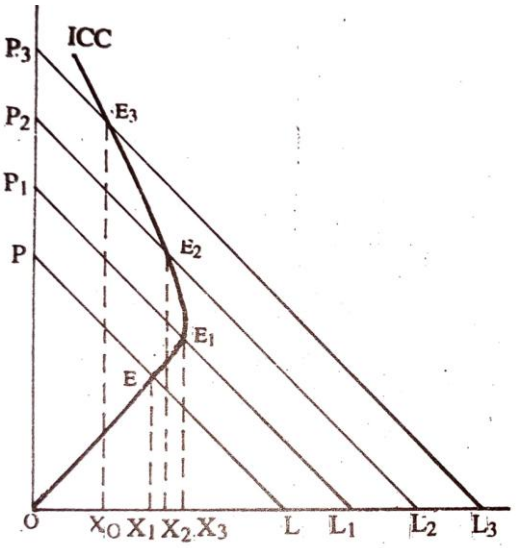

रेखाचित्र - 4.6

(ii) **जब x वस्तु सामान्य तथा y वस्तु निकृष्ट हो** –इस स्थिति में उपभोक्ता की मौद्रिक आय बढ़ने पर x की माँग में वृद्धि तथा y की मांग में कमी होती है। सामान्य वस्तु के लिये मौद्रिक आय प्रभाव धनात्मक तथा निकृष्ट वस्तु के लिये ऋणात्मक होता है।

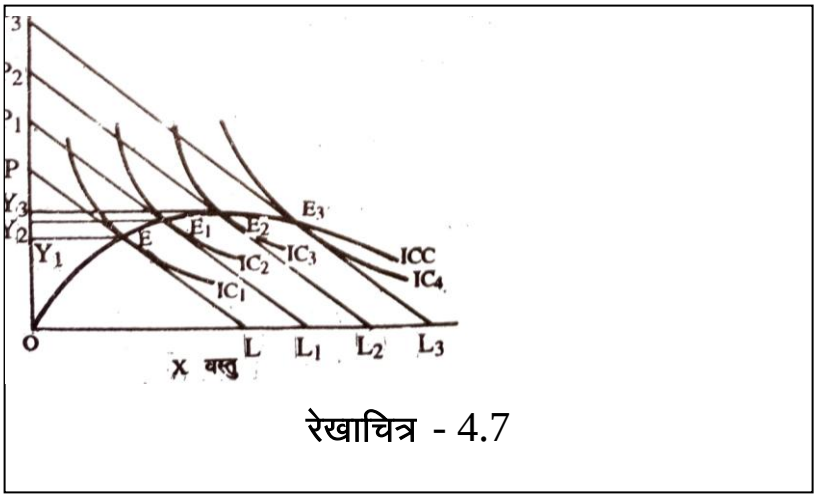

रेखाचित्र - 4.7

4.9.2 मूल्य में परिवर्तन का प्रभाव –

उपभोक्ता की मौद्रिक आय के स्थिर रहने पर किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के पकरणामस्वरूप उस वस्तु की उपभोग मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव को मूल्य प्रभाव कहते हैं। यह मूल्य परिवर्तन के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय में होने वाला परिवर्तन / प्रभाव ही है।

मूल्य में कमी यदि वस्तु के उपभोग में वृद्धि लाये तो मूल्य प्रभाव ऋणात्मक होगा। पर यदि उपभोग में कमी प्रतित हो तो मूल्य प्रभाव धनात्मक होता हैं। इसकी व्याखा हम मूल्य उपभोग वक्र के द्वारा करते हैं। मूल्य में परिवर्तन के कारण प्राप्त नये और पूर्व संतुलन बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा ही मुल्य – उपभोग वक्र होता है।

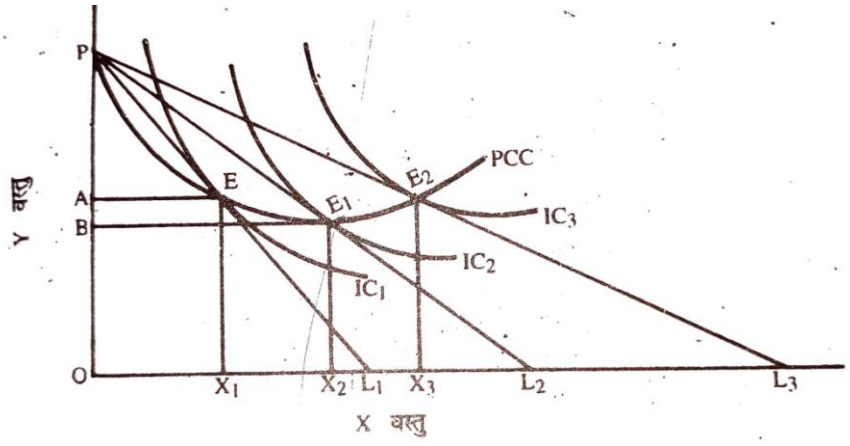

रेखाचित्र - 4.8

उपरोक्त रेखाचित्र मे X वस्तु के मूल्य में निरंतर कमी के परिणाम स्वरूप उपभोक्ता की संतुलन बिन्दु में परिवर्तन दृष्टिगोचर है और बजट रेखा में वितर्तन उसकी बढती हुई क्रय शक्ति है। विभिन्न संतुलन बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा ही मूल्य – उपभोग वक्र है।

4.10 हिक्स का दृष्टिकोण : कीमत प्रभाव का विभाजन

प्रो0 हिक्स ने सर्वप्रथम कीमत प्रभाव को आय प्रभाव तथा प्रतिस्थापन प्रभाव में विभक्त किया। हिक्स के अनुसार –

''अन्य बातों के समान रहने पर , अर्थात् मौद्रिक आय तथा एक वस्तु की कीमत स्थिर रहने पर दुसरी वस्तु के मूल्य में कमी द्वारा उपभोक्ता की वास्तविक आयच में वृद्धि होती है। इस बढ़ी हुई वास्तविक आाय को क्षतिपूरक रेख के माध्यम से इस प्रकार निकाला जाये कि क्षतिपूरक रेखा – पूर्व अनधिमान वक्र को स्पर्ष कर सके और उपभोक्ता पूर्व संतुष्टि के स्तर को प्राप्त कर सके। इस स्थिति में उपभोक्ता X की पहले से अधिक मात्रा क्रय करता है, लेकिन फिर भी संतुष्टि की पूर्व स्तर पर बना रहता है। यह प्रतिस्थापन प्रभाव होता है।

यदि उपभोक्ता को बढ़ी हुई आय पुनः वापस क्रय हेतु दे दी जाये तो ऐसी स्थिति में वह नये संतुष्टि के स्तर को प्राप्त कर लेता है, जहाँ पर नया अनधिमान वक्र विवर्तित बजट रेखा को स्पर्श करता है। मूल्य में कमी के

कारण वास्तविक आय में होने वाली वृद्धि को आय प्रभाव कहा जाता है। इस प्रकार प्रो0 हिक्स के अनुसार मूल्य प्रभाव एक प्रकार से प्रतिस्थापन प्रभाव एवं आय प्रभाव का योग होता है

उपरोक्त रेखाचित्र में x तथा y वस्तु को क्रमश दैनिक तथा लम्बवत अक्ष पर माप गया है। बजट रेखा PL है तथा उपभोक्ता E_1 बिन्दु पर संतुलन में है। x वसतू की मूल्य में कमी के कारण बजट रेखा PL_1 हो जाती है तथा नया संतुलन बिन्दु E_3 है । E_1 से पर E_3 जाना मूल्य प्रभाव को दर्शाता है। P_1L_2 एक क्षतिपूर्ति रेखा है, जो परिवर्तित बजट रेखा PL_1 के समानान्तर है और पूर्व अनधिमान वक्र IC_1 को E_2 बिन्दु पर स्पर्श करती है । E_2 बिन्दु पर उपभोक्ता वस्तु – X की पहले से अधिक मात्रा उपभोग करता है, लेकिन संतुष्टि स्तर समान बना रहता है। इस प्रकार E_1 से E_2 पर जाना प्रतिस्थापन प्रभाव है। क्षतिपूर्ति रेखा के माध्यम से कम की गयी वास्तविक आय यदि उपभोक्ता को पुनः प्रदान कर दी जाये तो वह E_2 से E_3 बिन्दु पर संतुलन प्राप्त करता है। यह आय प्रभाव को दर्शाता है। इस प्रकार –

कीमत प्रभाव = प्रतिस्थापन प्रभाव + आय प्रभाव

4.11 स्लट्स्की दृष्टिकोण

स्लट्स्की के अनुसार वस्तु की कीमत में कमी के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय जब बढ़ जाती है , तो वास्तविक आय को स्थिर रखने के लिये उपभोक्ता के पास उतनी मुद्रा रहने दिया जाये, जिससे वह मूल्य परिवर्तन के बाद भी वस्तुओं का वही संयोग क्रय कर सके , जो पूर्व में करता था। इसलिए नयी बजट रेखा या क्षतिपूर्ति रेखा (P_1L_2) विवर्तित बजट रेखा के समानान्तर इस प्रकार खींची जाये कि वह संतुलन स्तर E_1 (पूर्व संतुलन स्तर) से होकर जाये और जिससे उपभोक्ता पहले जितना या E_2 बिन्दु पर उपभोग करे जहाँ क्षतिपूर्ति रेखा नये अनधिमान वक्र IC_2 को स्पर्श करे , जिससे x वस्तु की मात्रा अधिक होगी तथा उपभोक्ता के संतुष्टि के स्तर से उच्च होगा। इस प्रकार से E_1 से E_2 पर जाना मूल्य प्रतिस्थापन प्रभाव को प्रदर्शित करता है। E_1 से E_3 पर जाना मूल्य प्रभाव को प्रदर्शित करता है। E_1 से E_3 पर जाना आय प्रभाव है।

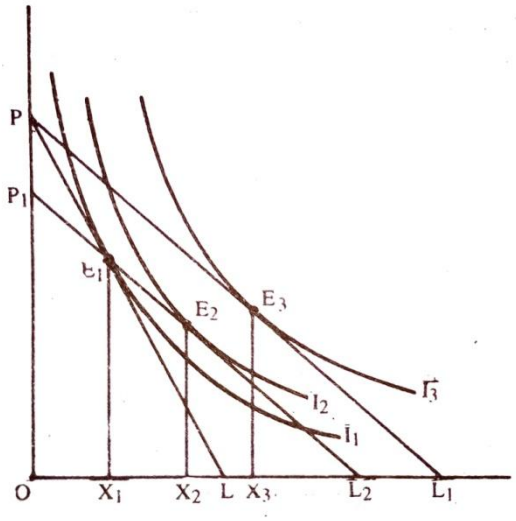

रेखाचित्र - 4.10

4.12 प्रकटित अधिमान सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो0 पाल ए0 सैमुएलसन ने 1948 ई0 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ' Consumption Theory is Term of Revealed Prefference' में किया । यह सिद्धान्त उपभोक्ता मांग की व्यवहारात्मक व्याखा प्रस्तुत करता है। सैमुएलसन ने बताया कि उपभोक्ता बाजार मे अपन व्यवहार मे माध्यम से यह व्यक्त कर देता है कि वह अधिकतम संतुष्टि की स्थिति में वस्तु के विभिन्न संयोगों में किस संयोग को क्रय करेगा।

मान्यताएँ–

- उपभोक्ता एक विवेकशील प्राणी है।
- सकर्मकता की मान्यता।
- स्थिरता की मान्यता।
- सबल क्रमबद्धता ।
- उपभोक्ता का चयन उसके अधिमान को प्रकट करता है।
- उपभोक्ता कम वस्तुओं की तुलना में अधिक वस्तुओं को अधिमान देता है।
- व्यक्तिगत उपभोक्ता के अधिमानों से सम्बन्धित चयन सम्बन्धी दो अवलोकनों में टकराव नहीं हो सकता है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर सैमुएलसन ने यह व्यक्त किया कि जब कोई उपभोक्ता बाजार में एक बार किसी संयोग का चयन कर लेता है तो दूसरे समय में वह पुनः किसी अन्य वस्तु के सन्दर्भ उसे वरीयता प्रदान नहीं करेगा। अर्थात उपभोक्ता स्वंय द्वारा चयन किये गये संयोग के पक्ष में अन्य सभी उपलब्ध वैकल्पिक संयोगों को त्याग देता है। इस प्रकार उपभोक्ता चयन अधिमान को प्रकट करता है।

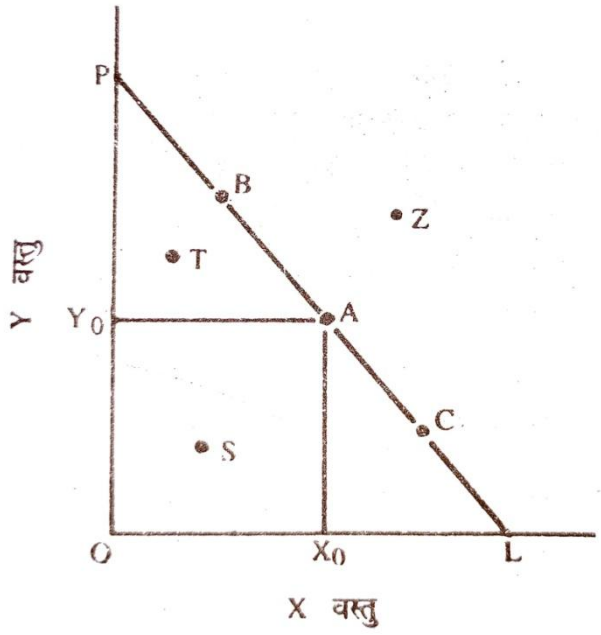

रेखाचित्र - 4.11

यदि उपभोक्ता किसी स्थिति में संयोग A का चयन करता है तो वह अन्य समय में उस बजट रेखा पर स्थित B तथा C संयोग को वरीयता प्रदान नहीं प्रदान करेगा। R तथा S बिन्दु बजट रेखा से नीचे या कम उपयोगिता वाले हैं तथा बजट रेखा से बाहर स्थिति Z बिन्दु को क्रय शक्ति से अधिक होने के कारण चयन नहीं कर सकता। अतः उपभोक्ता A बिन्दु पर अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करेगा , जहाँ वह x तथा y वस्तु की क्रमशः x_0 तथा y_0 मात्रा क्रय करता हैं।

4.13 प्रकटित अधिमान दृष्टिकोण तथा मांग विश्लेषण

सैमुएलसन ने धनात्मक आय लोच की मान्यता के आधार पर यह स्पष्ट किया कि किसी वस्तु के मूल्य में कमी उपभेक्ताा की वास्तविक आय में वृद्धि लायेगी और उपभोक्ता की आय में वृद्धि , मांग में वृद्धि लायेगी। यदि बढ़ी हुई वास्तविक आय को क्षतिपूर्ति रेखा के माध्यम से निकाला जाये तो उपभोक्ता चाहे तो पूर्व संयोग का क्रय करे या अन्य संयोग का जिसमें x की पूर्व से अधिक होगी। यह क्षतिपूर्ति रखा पूर्व संतुलन के बिन्दु से गुजर रही विवर्तित बजट रेखा PL_1 के समानान्तर होगी, यह धनात्मक आय लोच या मूल्य मांग के नियम को स्पष्ट करता है।

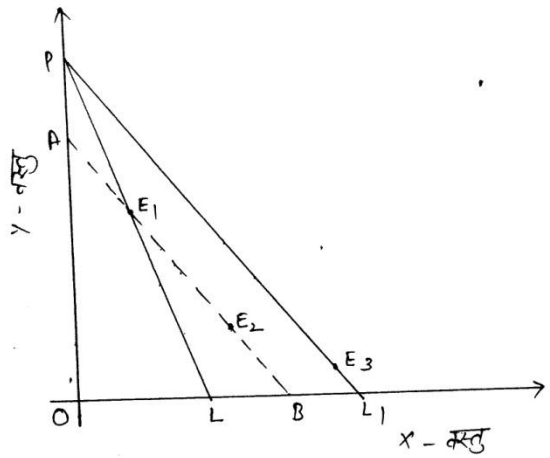

रेखाचित्र - 4.12

4.13 <u>प्रकटित अधिमान सिद्धान्त , प्रतिस्थापन तथा आय प्रभाव</u> –

उपरोक्त रेखाचित्र में उपभोक्ता बजट रेखा PL के E_1 बिन्दु पर संतुलन में है। वस्तु x के मूल्य में कमी बजट रेखा को ऊपर की ओर विवर्तित PL_1 कर देती है तथा उपभोक्ता E_3 बिन्दु पर संतुलन में है। बढ़ी आय को क्षतिपूर्ति रेखा A B से निकाल देने पर नया संतुलन बिन्दु E_2 हो जाता है। बढ़ी हुयी आय उपभोक्ता को पुनः प्राप्त होने पर वह E_3 बिन्दु पर संतुलन में होगा । इस प्रकार

E_1 से E_3 पर जाना ————————— मूल्य प्रभाव

E_1 से E_2 पर जाना —————————— प्रतिस्थापन प्रभाव

E_2 से E_3 पर जाना ————————— आय प्रभाव

उपरोक्त तीनों प्रभाव ऋणात्मक हैं। इस प्रकार सैमुएलसन ने स्पष्ट किया कि उपभोक्ता बाजार में अपने व्यवहार के माध्यम से अधिकतम संतुष्टि स्तर वाले संयोग का चयन करता है।

<u>आलोचना</u> –

(i)दृढ़ क्रमबद्धता तथा अटस्थता की मान्यता अस्वीकार्य है।

(ii) मांग सिद्धान्त की सशर्त व्याख्या अव्यावहारिका है।

(iii) निरंतरता की मान्यता की उपेक्षा तर्क संगत नहीं है।

4.14 बोध प्रश्न

1. उपयोगिता से आप क्या समझते हैं?
2. कुल उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता के बीच क्या संबंध होता है?
3. अनधिमान वक्र से आप क्या समझते हैं?
4. प्रतिस्थापन की सीमांत दर किसे कहते हैं?

5. मूल्य प्रभाव क्या होता है?

6. मूल्य/कीमत प्रभाव किन अन्य प्रभावों का योग होता है?

7. प्रकटित अधिमान सिद्धांत का प्रतिपादन किसने किया?

4.15 सारांश

इस इकाई में उपयोगिता की गणनावाची माप की अवधारणा को स्पष्ट करने के साथ साथ उपयोगिता की क्रमवाची माप की व्याख्या की गयी है। किसी वस्तु का मुल्य हम इसलिये देते हैं क्योंकि उस वस्तु में उपयोगिता पायी जाती हैं। इस प्रकार किसी वस्तु के बदले दिया जाने वाला मूल्य ही उस वस्तु की उपयोगिता है। कुल उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता के बीच एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध यह है कि अधिकतम संतुष्टि के स्तर पर जब कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है, तो सीमान्त उपयोगिता शून्य रहती हैं तथा इस बिन्दु के बाद जब कुल सीमान्त उपयोगिता घटती है तो सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है।

दो या दो से अधिक वस्तुओं एवं सेवाओं के ऐसे संयोगों या युग्मों को प्रदर्शित करने वाला वक्र जिससे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त हो , उसे उदासीनता वक्र या अनधिमान वक्र कहते हैं।

4.16 शब्दावली

कुल उपयोगिता – एक निश्चित समय में निश्चित वस्तु के उपभोग से प्राप्त होने वाली उपयोगिताओं का योग

औसत उपयोगिता – प्रति इकाई वस्तुओं के उपभोग से प्राप्त होने वाली उपयोगिता ही औसत उपयोगिता है।

सीमान्त उपयोगिता – किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उपभोग से कुल उपयोगिता में होने वाली वृद्धि ही सीमान्त उपयोगिता है।

4.17 संदर्भ ग्रंथ

1. Principles of Micro Economics — Mansfield
2. A Text Book of Economic Theory — Stonier & Hague
3. Microeconomic Theory — A.P. Lerner
4. A Revision of Demand Theory — J.R. Hicks

4.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1 – एक उपभोक्ता की आवश्यकता को संतुष्ट करने में वस्तु की क्षमता को उपयोगिता कहते हैं। उपयोगिता की माप के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण पाये जाते हैं– गणनावाचक दृष्टिकोण तथा क्रमावाचक दृष्टिकोण।

उत्तर 2 – कुल उपयोगिता तथा सीमान्त उपयोगिता के बीच एक महत्वपूर्ण सम्बन्ध यह है कि अधिकतम संतुष्टि के स्तर पर जब कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है, तो सीमान्त उपयोगिता शून्य रहती हैं तथा इस बिन्दु के बाद जब कुल सीमान्त उपयोगिता घटती है तो सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है।

उत्तर 3 – दो या दो से अधिक वस्तुओं एवं सेवाओं के ऐसे संयोगों या युग्मों को प्रदर्शित करने वाला वक्र जिससे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त हो , उसे उदासीनता वक्र या अनधिमान वक्र कहते हैं।

उत्तर 4 – वस्तु x की वस्तु y के लिये प्रतिस्थापन की सीमांत दर वस्तु y की वह माना है, जिसको वस्तु x की एक अतिरिक्त इकाई को उपभोग में लाने के लिये उपभोक्ता त्याग देता है। दो वस्तुओं के बीच प्रतिस्थापन की सीमांत दर उनके सीमांत उपयोगिता के अनुपात के बराबर होता है।

उत्तर 5 – उपभोक्ता की मौद्रिक आय के स्थिर रहने पर किसी वस्तु के मूल्य में परिवर्तन के पकरणामस्वरूप उस वस्तु की उपभोग मात्रा पर पड़ने वाले प्रभाव को मूल्य प्रभाव कहते हैं। यह मूल्य परिवर्तन के कारण उपभोक्ता की वास्तविक आय में होने वाला परिवर्तन / प्रभाव ही है।

उत्तर 6 – मूल्य प्रभाव एक प्रकार से प्रतिस्थापन प्रभाव एवं आय प्रभाव का योग होता है।

उत्तर 7 – इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो0 पाल ए0 सैमुएलसन ने 1948 ई0 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ' Consumption Theory is Term of Revealed Prefference' में किया ।

4.19 अभ्यासार्थ प्रश्न

- सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम को समझाइये?
- उपयोगिता के गणनावाची तथा क्रमवाची माप में विभेद करिये।
- अनधिमान वक्र दृष्टिकोण की विस्तृत व्याख्या करिये।
- बजट रेखा तथा अनधिमान वक्र की सहायता से उपभोक्ता संतुलन की व्याख्या कीजिये।
- उपभोक्ता व्यवहार के संदर्भ में हिक्स तथा स्लस्ट्की के दृष्टिकोण को समझाइये।
- प्रकटित अधिमान सिद्धांत की व्याख्या कीजिये।

खण्ड–1 इकाई–5

माँग का अर्थ माँग को निर्धारित करने वाले तत्व मांग तालिका माँग वक्र माँग का नियम

इकाई की रुपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 माँग का अर्थ
5.3 माँग को निर्धारित करने वाले तत्व
5.4 मांग तालिका–
5.4.1 व्यक्तिगत मांग तालिका
5.4.1 सामूहिक मांग तालिका
5.5 माँग वक्र
5.5.1 बाजार माँग वक्र
5.6 माँग फलन
5.7 माँग का नियम
5.8 माँग के प्रकार
5.9 माँग के नियम के अपवाद
5.10 मांग में परिवर्तन
5.10.1 मांग में विस्तार एवं संकुचन
5.10.2 मांग में वृद्धि प्रकर्षण तथा मांग में कमी विकर्षण
5.11 बोध प्रश्न
5.12 सारांश
5.13 शब्दावली
5.14 संदर्भ ग्रंथ
5.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम समझ सकेंगे कि –

- मांग क्या होती है? इसके विभिन्न प्रकार क्या हैं?
- माँग किन तत्वों से निर्धारित होती है?
- माँग तालिका क्या है? इसके प्रकार क्या हैं?
- माँग वक्र का स्वरूप कैसा होता है?
- माँग फलन क्या है?

- माँग का नियम क्या होता है?
- माँग नियम के अपवाद क्या हैं?
- माँग में परिवर्तन किस प्रकार होता है?

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई माँग विश्लेषण को प्रस्तुत किया गया है, जिसके अध्ययन के बाद विधार्थी माँग की अवधारणा को बेहतर तरीके से समझने में सक्षम हो सकेंगे।

5.2 माँग का अर्थ –

माँग विश्लेषण उपभोक्ता के व्यवहार या किसी वस्तु के संबंध में उपभोक्ता की मांग में होने वाले परिवर्तन के विश्लेषण से संबंधित है जबकि व्यवहार को प्रभावित करने वाले चर परिवर्तित हो।

"किसी दिए गए समय में दिए हुए मूल्य पर कोई उपभोक्ता बाजार में किसी वस्तु की जो विभिन्न मात्राएं क्रय करता है उसे वस्तु की मांग कहते हैं।" मांग के साथ मूल्य का उल्लेख आवश्यक है क्योंकि भिन्न भिन्न मूल्य पर किसी वस्तु की भिन्न भिन्न मात्राएँ माँगी जाएँगी। मूल्य ही वह तत्व है जो माँग को उस वस्तु की इच्छा तथा उस वस्तु की आवश्यकता से अलग कर देता है।

बेन्हम के अनुसार किसी दिये हुए मूल्य पर किसी वस्तु की माँग उस वस्तु की वह मात्रा है, जो उस मूल्य पर एक निश्चित समय में क्रय की जाएगी।

5.3 माँग को निर्धारित करने वाले तत्व

माँग मात्रा को निर्धारित करने में वस्तु के मूल्य की महत्वपूर्ण भूमिका है, लेकिन कुछ अन्य तत्व भी मांग को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है–

1. उपभोक्ता की आय - किसी उपभोक्ता की मांग उसकी क्रय शक्ति पर निर्भर करती है। यह क्रय शक्ति उपभोक्ता की आय होती है जिसके बढ़ने पर उपभोक्ता द्वारा मांग में वृद्धि होती है।

2. राष्ट्रीय आय का असमान वितरण - आय के असमान वितरण तथा संकेंद्रण के परिणाम स्वरूप विलासिता की वस्तुओं की मांग में वृद्धि होगी।

3. बाजार में उपभोक्ताओं की संख्या - यदि उपभोक्ताओं की संख्या अधिक होगी तो वस्तु की मांग अधिक होगी तथा उपभोक्ताओं की संख्या कम होने पर मांग कम होगी।

4. भविष्य में मूल्य परिवर्तन की प्रत्याशा - यदि भविष्य में वस्तु के मूल्य में वृद्धि की आशा हो तो वर्तमान में उसकी मांग बढ़ जाएगी तथा मूल्य में कमी के आसार होने पर मांग में गिरावट दर्ज होगी।

5. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन - मुद्रा की मात्रा और प्रशस्ति परस्पर निर्भर होते हैं मुद्रा की मात्रा में वृद्धि मांग में वृद्धि लाती है।

6. स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं की कीमत – यदि दो परस्पर स्थानापन्न वस्तुएं हो तो एक वस्तु के मूल्य में वृद्धि दूसरी वस्तु की मांग में वृद्धि लाएगी तथा एक वस्तु की कीमत में कमी दूसरी वस्तु की मांग में कमी लाएगी। पूरक वस्तुओं के संदर्भ में किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि अन्य संबंधित पूरक वस्तु की मांग में कमी लाएगी, यदि एक वस्तु के मूल्य में कमी हो तो दूसरी की मांग बढ़ेगी।

7. रुचि फैशन तथा रीति रिवाज - रुचि फैशन तथा रीति रिवाज भी वस्तु की मांग निर्धारित करने में महत्वपूर्ण कारक हैं जिनके प्रभाव से बाजार मांग में वृद्धि होती है।

8. बचत तथा उपभोग की प्रवृत्ति - लोगों की उपभोग प्रवृत्ति में वृद्धि होने से मांग बढ़ जाती है तथा बचत की प्रवृत्ति में प्रबलता से मांग कम होती है।

9. जनसंख्या - बढ़ती हुई जनसंख्या से विशेष वस्तुओं जैसे खाद्यान्न आज की मांग बढ़ जाती है जनसंख्या की संरचना भी मांग को प्रभावित करती है।

इसके अतिरिक्त जलवायु व्यापार दशाएं औद्योगिक विकास आदि तत्व भी माँग को प्रभावित करते हैं

5.4 मांग तालिका

मांग तालिका या मांग सूची से अभिप्राय किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं की सूची से है जिन्हें एक उपभोक्ता बाजार में प्रचलित विभिन्न वैकल्पिक कीमतों पर क्रय करता है। मांग तालिका दो प्रकार की होती है–

5.4.1 व्यक्तिगत मांग तालिका –

जब हम समाज के विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किसी मूल्य पर मांगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं की सूची तैयार करते हैं तो उसे व्यक्तिगत मांग तालिका कहते हैं।

कीमत प्रति इकाई (रू)	मांगी गई इकाई
40	35
35	45
30	55
25	65
20	75

5.4.1 सामूहिक मांग तालिका –

जब विभिन्न व्यक्तियों की मांग तालिकाओं को मिला देते हैं (उनकी मांगों के क्षैतिज योग द्वारा) तो उसे सामूहिक या बाजार मांग तालिका कहते हैं।

संतरों की कीमत (रू)	विभिन्न उपभोक्ताओं की मांग मात्रा (दर्जनों में)				संतरों की कुल मांग (दर्जनों में)
	A	B	C	D	
12	4	6	8	7	25
16	3	4	6	5	18
20	2	3	4	3	12
24	1	2	3	2	8

5.5 माँग वक्र

मांग की तालिका का रेखा चित्र रूप ही मांग वक्र पर कहलाता है। जब हम मांग के विभिन्न मात्राओं तथा उनसे संबंधित कीमतों को रेखाचित्र रूप में प्रस्तुत करते हैं तो हमें एक वक्र प्राप्त होता है जिसे हम मांग वक्र कहते हैं।

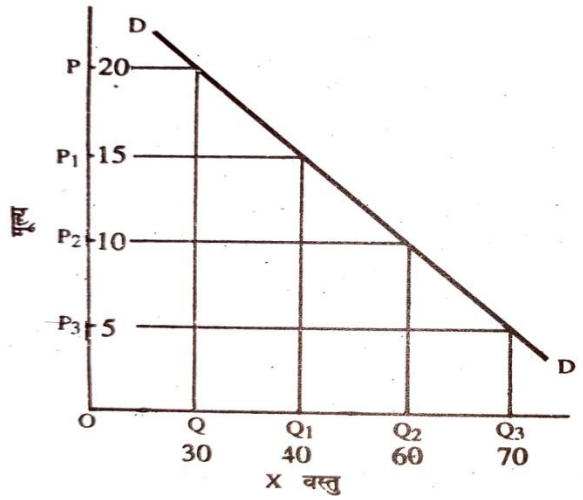

रेखाचित्र – 5.1

उपरोक्त रेखाचित्र में X अक्ष पर वस्तु की कीमतें दर्शायी गयी हैं, जिनसे संबंधित वस्तु की माँग मात्रा का Y–अक्ष पर इंगित किया गया है। DD रेखा माँग वक्र है।

5.5.1 बाजार माँग वक्र

व्यक्तिगत मांग वक्रों का क्षैतिज योग बाजार मांग वक्र होता है जो बाजार में किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर समस्त उपभोक्ताओं की उस वस्तु के लिए मांग मात्रा को दर्शाता है

5.6 माँग फलन

वस्तु की माँग तथा इस माँग को प्रभावित करने वाले कारकों के बीच परस्पर संबंध स्थापित करने वाले फलन को माँग फलन कहते हैं।

$$D_x = f(P_x, I, P_y, P_z)$$

यहां D_x = वस्तु X की माँग

P_x = वस्तु X की कीमत

I = उपभोक्ता की आय

P_y , P_z = अन्य वस्तुओं की कीमत

5.7 माँग का नियम

मांग के नियम का प्रतिपादन मार्शल ने उपयोगिता की गणनात्मक माप को संभव मानकर किया। इस नियम की प्रमुख मान्यताएं निम्नलिखित हैं–

- उपयोगिता की संख्या वाचक माप संभव है।
- सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम का क्रियाशीलन
- मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर है ।
- वस्तु की कीमत के अतिरिक्त मांग को प्रभावित करने वाले सभी कारक स्थिर हैं।
- वस्तु का कोई निकट स्थानापन्न बाजार में उपलब्ध नहीं है ।

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर मार्शल ने बताया कि किसी वस्तु की मांगी हुई मात्रा तथा उस वस्तु के मूल्य के बीच विलोम संबंध पाया जाता है। मार्शल के अनुसार मांग का एक सामान्य नियम है– किसी वस्तु की अधिक मात्रा में बिक्री के लिए उसके मूल्य में निश्चित रूप से कमी होनी चाहिए ताकि उसके अधिक क्रेता

मिल सके अर्थात दूसरे शब्दों में मूल्य के बढ़ने से मांग घटती है घटने से मांग बढ़ती है इस प्रकार मार्शल के अनुसार वस्तु की मांग तथा कीमत के बीच विपरीत फलनात्मक संबंध पाया जाता है।

5•8 माँग के प्रकार

माँग तीन प्रकार की होती है–

- **कीमत माँग** – अन्य तत्वों के स्थिर जाने पर उपभोक्ता द्वारा विभिन्न कीमतों पर वस्तु की तरह की गई मात्रा
- **आय मांग** –उपभोक्ता द्वारा आय के विभिन्न स्तरों पर वस्तु की खरीदी गई मात्रा बशर्ते अन्य कारक स्थिर हों
- **प्रत्युत्तर मांग** –प्रत्युत्तर मांग से अभिप्राय किसी वस्तु की विभिन्न विभिन्न मात्राओं से है जिन्हें उपभोक्ता किसी अन्य संबंधित वस्तु की विभिन्न कीमतों पर क्रय करता है

5.9 माँग के नियम के अपवाद

कुछ परिस्थितियों में कीमत और मांग के बीच मार्शल के मांग नियम का पालन नहीं हो पाता है जो कि निम्नलिखित हैं–

- **गिफिन वस्तुएं** –यह विशेष प्रकार की निकृष्ट वस्तुएं होती हैं जिनकी कीमत में वृद्धि होने पर मांग बढ़ती है
- **कीमत वृद्धि की आशंका** – उपभोक्ताओं के बीच भविष्य में वस्तु की कीमत बढ़ने की आशंका हो तो उस समय बढ़ रही कीमतें हेतु मांग भी बढ़ेगी ।
- **आपातकालीन स्थिति** – युद्ध अकाल सूखा आदि की स्थिति में मांग का नियम लागू नहीं होता है।
- **फैशन परिवर्तन की स्थिति**
- मिथ्या आकर्षण प्रभाव की स्थिति

5.10 मांग में परिवर्तन

5.10.1 मांग में विस्तार एवं संकुचन– अन्य बातों के समान रहने पर जब मूल्य में कमी मांग निवृत्ति लाए तो इसे मान विस्तार और जो मूल्य में वृद्धि मांग में कमी लाए तो इसे मांग संकुचन कहते हैं।

$$D_x = f(P_x)$$

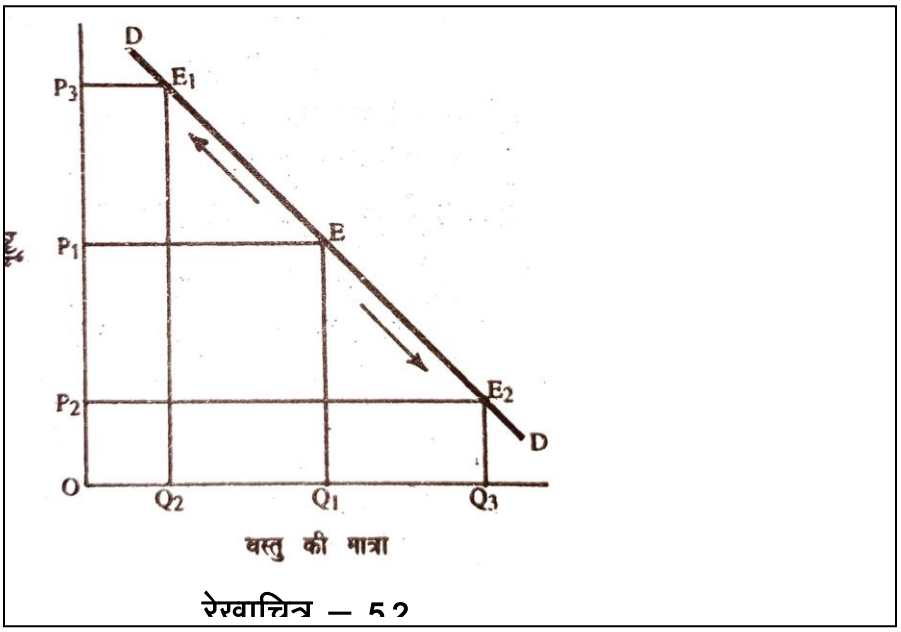

रेखाचित्र – 5.2

5.10.1 मांग में वृद्धि प्रकर्षण तथा मांग में कमी विकर्षण –

मांग में वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य तत्वों में परिवर्तन के कारण मांग में वृद्धि प्रकर्षण तथा कमी विकर्षण होती है जिससे मांग वक्र ऊपर या नीचे की ओर विवर्तित हो जाता है।

$$D_x = f(P_y, Y, I, F.....)$$

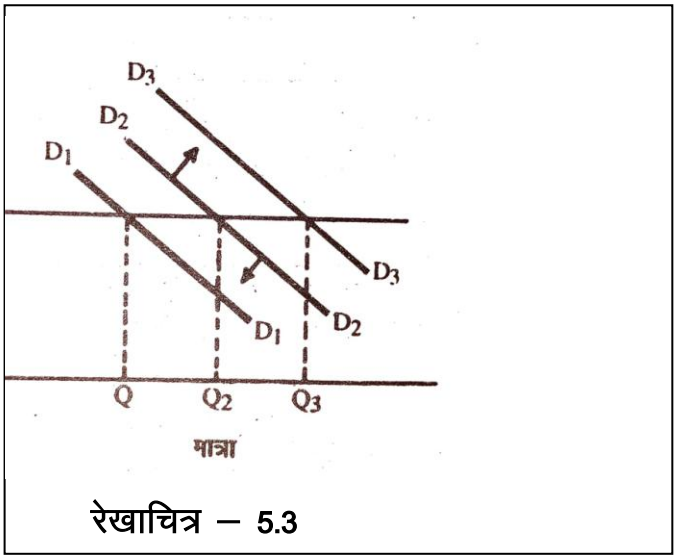

रेखाचित्र – 5.3

5.11 बोध प्रश्न

1. माँग किन तत्वों से निर्धारित होती है?
2. माँग फलन क्या है?
3. माँग वक्र का स्वरूप कैसा होता है?

5.12 सारांश

माँग विश्लेषण उपभोक्ता के व्यवहार या किसी वस्तु के संबंध में उपभोक्ता की मांग में होने वाले परिवर्तन के विश्लेषण से संबंधित है जबकि व्यवहार को प्रभावित करने वाले चर परिवर्तित हो।"किसी दिए गए समय में दिए हुए मूल्य पर कोई उपभोक्ता बाजार में किसी वस्तु की जो विभिन्न मात्राएं क्रय करता है उसे वस्तु की मांग कहते हैं।" मांग के साथ मूल्य का उल्लेख आवश्यक है क्योंकि भिन्न भिन्न मूल्य पर किसी वस्तु की भिन्न भिन्न मात्राएँ माँगी जाएँगी। मूल्य ही वह तत्व है जो माँग को उस वस्तु की इच्छा तथा उस वस्तु की आवश्यकता से अलग कर देता है।

5.13 शब्दावली

माँग – किसी दिए गए समय में दिए हुए मूल्य पर कोई उपभोक्ता बाजार में किसी वस्तु की जो विभिन्न मात्राएं क्रय करता है उसे वस्तु की मांग कहते हैं।

माँग तालिका – मांग तालिका या मांग सूची से अभिप्राय किसी वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं की सूची से है जिन्हें एक उपभोक्ता बाजार में प्रचलित विभिन्न वैकल्पिक कीमतों पर क्रय करता है।

5.14 संदर्भ ग्रंथ

1.	Modern Micro Economics	A. Koustsoyiannis
2.	Principles of Micro Economics	Mansfield
3.	A Text Book of Economic Theory	Stonier & Hague
4.	Microeconomic Theory	A.P. Lerner
5.	A Revision of Demand Theory	J.R. Hicks
6.	Measurement of Utility	Tapas Majumdar
7.	Principles of Economics,6th edition,	A. Marshall

5.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1 – माँग मात्रा को निर्धारित करने में वस्तु के मूल्य की महत्वपूर्ण भूमिका है, लेकिन कुछ अन्य तत्व भी मांग को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है–

1. उपभोक्ता की आय
2. राष्ट्रीय आय का असमान वितरण
3. बाजार में उपभोक्ताओं की संख्या
4. भविष्य में मूल्य परिवर्तन की प्रत्याशा
5. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन
6. स्थानापन्न तथा पूरक वस्तुओं की कीमत
7. रुचि फैशन तथा रीति रिवाज
8. बचत तथा उपभोग की प्रवृत्ति
9. जनसंख्या

इसके अतिरिक्त जलवायु व्यापार दशाएं औद्योगिक विकास आदि तत्व भी माँग को प्रभावित करते हैं

उत्तर 2 – वस्तु की माँग तथा इस माँग को प्रभावित करने वाले कारकों के बीच परस्पर संबंध स्थापित करने वाले फलन को माँग फलन कहते हैं।

उत्तर 3 – मांग की तालिका का रेखा चित्र रूप ही मांग वक्र पर कहलाता है। जब हम मांग के विभिन्न मात्राओं तथा उनसे संबंधित कीमतों को रेखाचित्र रूप में प्रस्तुत करते हैं तो हमें एक वक्र प्राप्त होता है जिसे हम मांग वक्र कहते हैं।

5.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मांग को परिभाषित करते हुए, इसे निर्धारित करने वाले तत्वों की व्याख्या करिये।
2. माँग के नियम की व्याख्या कीजिये।

खण्ड–1
इकाई–6

माँग की लोच – अर्थ, परिभाषा, कीमत, आय, तिरछी लोच मापने की विधियाँ

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 मांग की लोच : अर्थ

6.3 परिभाषा

6.4 मांग की कीमत लोच

6.5 माँग की कीमत लोच के प्रकार

- **6.5.1** पूर्णतया लोचदार मांग
- **6.5.2** पूर्णतया बेलोच माँग
- **6.5.3** समलोचदार मांग/इकाई लोच
- **6.5.4** अधिक लोचदार मांग
- **6.5.5** बेलोच मांग

6.6 मांग की कीमत लोच मापने की विधि

- **6.6.1** *कुल व्यय विधि*
- **6.6.2** *माँग की चाप लोच विधि*
- **6.6.3** *मांग वक्र के किसी बिन्दु पर कीमत लोच*

6.7 मांग की आय लोच

6.8 मांग की तिरछी लोच

6.9 बोध प्रश्न

6.10 सारांश

6.11 शब्दावली

6.12 संदर्भ ग्रंथ

6.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेंगे –

- माँग कि लोच का अर्थ एवं प्रकार
- माँग कि लोच मापने की विधियाँ
- माँग कि कीमत, आय तथा तिरछी लोच

6.1 प्रस्तावना

इस इकाई में माँग की लोच की अवधारणा स्पष्ट की गयी है, जिसका उपभोक्ता व्यवहार के विश्लेषण में अभिन्न स्थान है। मांग लोच की अवधारणा बाजार में उपभोक्ता की मांग मात्रा जानने में सहायक है।

6.2 मांग की लोच : अर्थ

आर्थिक सिद्धान्त में लोच की धारणा को सर्वप्रथम मार्शल ने प्रस्तुत किया। कीमत में परिवर्तन का प्रभाव वस्तु की माँग पड़ता है, लेकिन यह यह प्रभाव सभी वस्तुओं की माँग पर एक समान नहीं पड़ता। कीमत में परिवर्तन की प्रतिक्रिया में वस्तु की माँग में आनुपातिक परिवर्तन ही माँग की लोच कहलाती है।

6.3 परिभाषा

वस्तु के मूल्य में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाला आनुपातिक परिवर्तन की माप ही, माँग की लोच होती है।

6.4 मांग की कीमत लोच

वस्तु की कीमत में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन के कारण उस वस्तु की माँगी गयी मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन के अनुपात को माँग की कीमत लोच कहते हैं।

$$\text{कीमत लोच} = \frac{\text{माँग मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$e_p = \frac{\text{मांग मात्रा में परिवर्तन / प्रारम्भिक मांग}}{\text{कीमत में परिवर्तन / प्रारम्भिक कीमत}}$$

$$= \frac{\Delta q/q}{\Delta P/P} = \frac{\Delta q}{q} \div \frac{\Delta P}{P}$$

$$= \frac{\Delta q}{q} \times \frac{P}{\Delta P}$$

$$e_p = \frac{\Delta q}{\Delta P} \cdot \frac{P}{q}$$

जहाँ : e_p = माँग की कीमत लोच

Δq = मांग मात्रा में परिवर्तन Δp = कीमत में परिवर्तन

q = प्रारम्भिक मांग मात्रा p = प्रारम्भिक कीमत

6.5 माँग की कीमत लोच के प्रकार

वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाले परिवर्तन की सापेक्षता के आधार पर माँग की मूल्य लोच को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है–

6.5.1 पूर्णतया लोचदार मांग ($e_p=\infty$) -

जब वस्तु के मूल्य में अल्पवृद्धि से माँग शून्य हो जाये और अल्प कमी से माँग में अपरिमित वृद्धि हो, तो उसे वस्तु की पूर्णतया लोचदार माँग कहते है। इस स्थिति माँग वक्र आधार अक्ष के समानान्तर होता है।

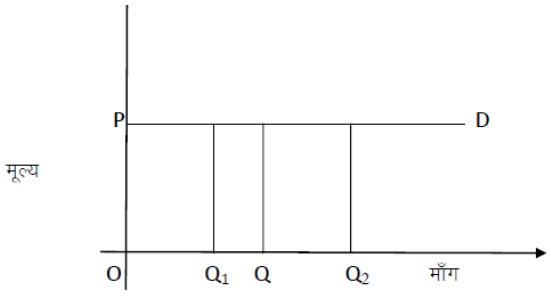

रेखाचित्र – 6.1

6.5.2 पूर्णतया बेलोच माँग (ep= 0) –

जब वस्तु के मूल्य परिवर्तन के बाद, भी, माँग में कोई परिवर्तन न हो, तो उसे पूर्णतया बेलोच माँग कहते हैं।

6.5.3 समत

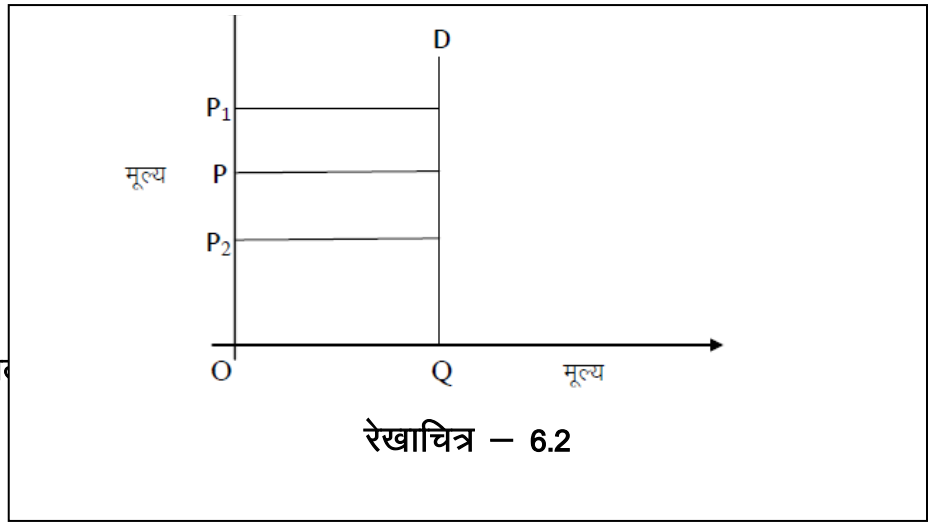

रेखाचित्र – 6.2

वस्तु की मांग में सापेक्षिक परिवर्तन, उसकी कीमत में सापेक्षिक परिवर्तन के बराबर होता है।

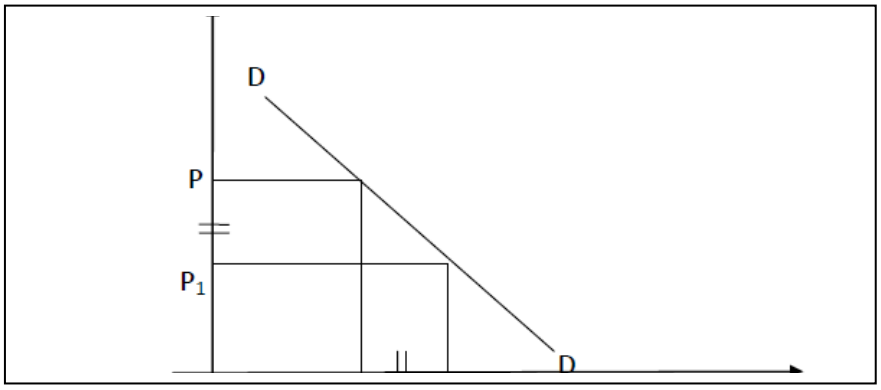

6.5.4 अधिक लोचदार मांग (ep>1) –

वस्तु की मांग में होने वाला सापेक्षिक परिवर्तन, उसकी कीमत में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन से अधिक होता है।

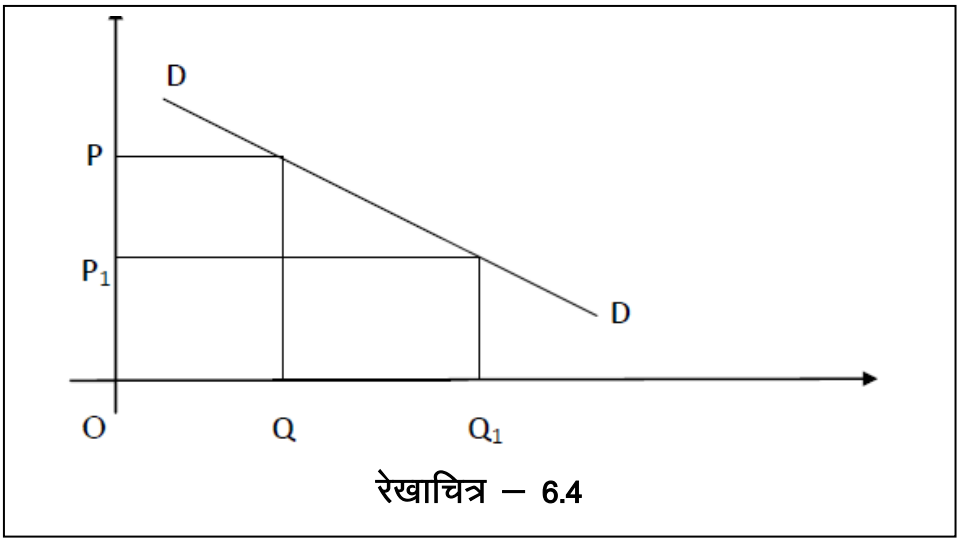

रेखाचित्र – 6.4

6.5.5 बेलोच मांग (ep<1)-

वस्तु की मांग में होने वाला सापेक्षिक, परिवर्तन उसकी कीमत में होने वाले सापेक्षिक परिवर्तन से कम होता है।

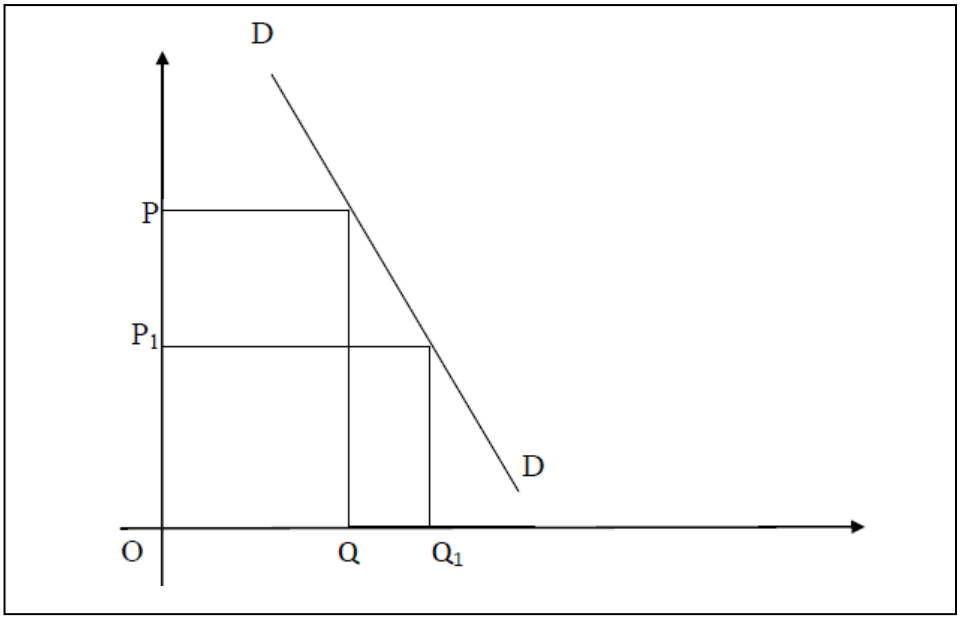

6.6 मांग की कीमत लोच मापने की विधि

मांग की कीमत लोच मापने की तीन विधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं–

6.6.1 *कुल व्यय विधि –*

किसी वस्तु की कीमत तथा उस वस्तु पर किये गये कुल व्यय में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। कीमत में होने वाले परिवर्तन के परिणाम स्वरूप वस्तु पर किये गये कुल व्यय में परिवर्तन के आधार पर हम वस्तु की कीमत लोच का पता लगा सकते हैं।

(i) जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर भी उस पर किया जाने वाला व्यय स्थिर रहता है, तो कीमत की लोच इकाई के बराबर होगा। ($e_p=1$)

(ii) जब किसी वस्तु की कीमत घटने से कुल व्यय में कमी होती है तथा कीमत में वृद्धि होने के साथ कुल व्यय बढ़ता है, तो माँग की कीमत लोच इकाई से कम होगी । ($e_p<1$)

(iii)यदि कीमत में कमी होने पर कुल व्यय बढ़ता है तथा कीमत में वृद्धि होने पर कुल व्यय कम होता है, तो माँग की कीमत लोच इकाई से अधिक होगी।($e_p<1$)

6.6.2 *माँग की चाप लोच विधि–*

इस विधि का प्रयोग माँग वक्र पर दो बिन्दुओं के बीच चलने की स्थिति में माँग की लोच ज्ञात करने के लिये किया जाता है। माँग वक्र पर दो बिन्दुओं के मध्य के भाग को 'चाप' (Arc) कहा जाता है; तथा सम्बन्धित माँग की लोच को **'चाप माँग की लोच'** कहते हैं। चाप लोच में प्रारम्भिक तथा परिवर्तन के पश्चात् कीमतों का औसत एवं प्रारम्भिक तथा परिवर्तन के पश्चात् मांगी गई मात्राओं का औसत लिया जाता है–

मांग की चाप लोच– $e_p=\frac{\Delta Q}{(Q_1+Q_2)/2} \div \frac{\Delta P}{(P_1+P_2)/2}$

$e_p=\frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{P_1+P_2}{Q_1+Q_2}$

जहाँ e_p = माग की कीमत लोच
Δq = मांग मात्रा में परिवर्तन Δp = कीमत में परिवर्तन
q = प्रारम्भिक मांग मात्रा p = प्रारम्भिक कीमत

6.6.3 *मांग वक्र के किसी बिन्दु पर कीमत लोच–*

मांग वक्र के किसी बिन्दु पर कीमत लोच को बिन्दु विधि' से भी मापा जा सकता है। रेखाचित्र में एक सरल रेखा वाला मांग वक्र DD' दिया हुआ है , जिस पर बिन्दु R स्थित है।बिन्दु पर कीमत लोच जानने का सूत्र

माँग की लोच (e_p) = R से निचला भाग / R के ऊपर का भाग

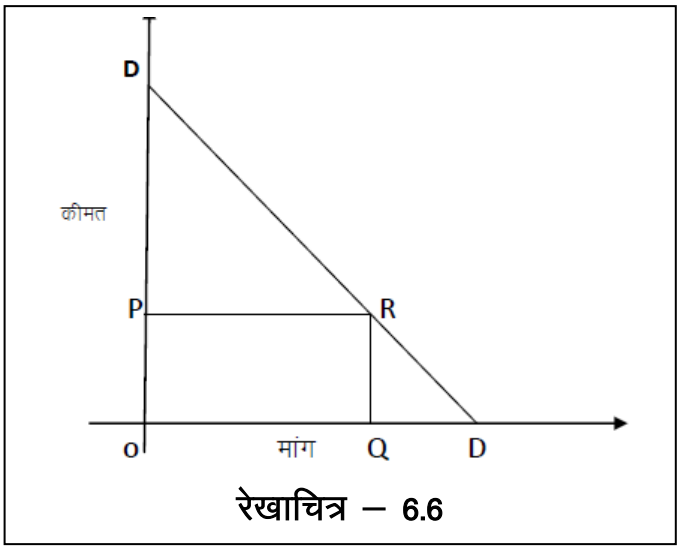

रेखाचित्र – 6.6

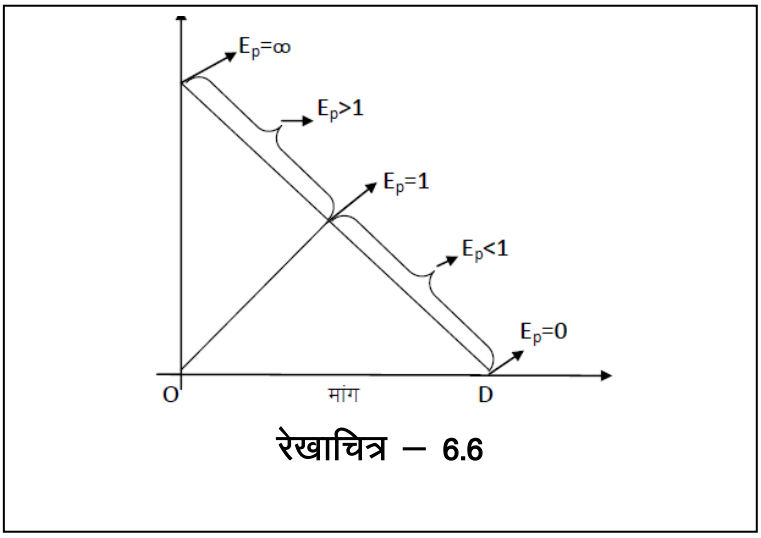

रेखाचित्र – 6.6

सीधी मांग वक्र –रेखा के विभिन्न बिन्दुओं पर मांग की कीमत लोच भिन्न–भिन्न होती है। बिन्दु पर मांग की लोच – इकाई के बराबर, मध्य बिन्दु से ऊपर इकाई से अधिक अर्थात् लोचदार तथा मध्य बिन्दु से नीचे इकाई से कम अर्थात्, बेलोचदार होती है। जिस बिन्दु पर मांग वक्र X–अक्ष को छुता है, वहाँ कीमत लोच शून्य

अर्थात् पूर्णतः बेलोचदार तथा जहाँ Y–अक्ष को छूता है, वहाँ कीमत लोच अनन्त अर्थात् पूर्णतः लोचदार होती है।

6.7 मांग की आय लोच

मांग की आय लोच हमें यह बताती है कि किसी की आय में एक निश्चित परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी किसी वस्तु के लिये माँग में कितना प्रतिशत परिवर्तन होता है।

आय लोच (e_i) = माँग में प्रतिशत परिवर्तन / आय में प्रतिशत परिवर्तन

$$e_i = \frac{\Delta Q}{Q} \times 100 \Big/ \frac{\Delta M}{M} \times 100$$

$$e_i = \frac{\Delta Q}{\Delta M} \times \frac{Y}{M}$$

जहाँ e_i = मांग की आय लोच
ΔM = आय में परिवर्तन ΔQ = मांग मात्रा में परिवर्तन
M = प्रारम्भिक आय Q = प्रारम्भिक मांग मात्रा

6.8 मांग की तिरछी लोच

विभिन्न वस्तुओं की मांग प्राय; एक–दूसरे से सम्बन्धित होती है, जिसके फलस्वरूप जब एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है, तो अन्य वस्तु की मांग भी बदल जाती है, जबकी असकी अपनी माँग स्थिर रहती है। एक वस्तु की कीमत परिवर्तन से अन्य वस्तु की मांग मात्रा में परिवर्तन मांग की तिरछी लोच को दर्शाता है। जब वस्तु Y की कीमत के घटने से वस्तु X की मांग मात्रा बढ़ती है तो माँग की तिरछी लोच को वस्तु X की मांग मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन को वस्तु Y की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन से विभाजित करके ज्ञात किया जा सकता है।

वस्तु X की वस्तु Y के लिये माँग की तिरछी लोच = $\frac{\text{वस्तु X की मांग मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{वस्तु Y की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$

$$e_c = \frac{\Delta Qx}{Qx} \div \frac{\Delta Py}{Py}$$

$$e_c = \frac{\Delta Qx}{\Delta Py} \div \frac{Py}{Qx}$$

जहाँ e_c = वस्तु X की वस्तु Y के लिये माँग की तिरछी लोच
ΔQx = वस्तु X की मांग मात्रा में परिवर्तन
ΔPy = वस्तु Y की कीमत में परिवर्तन
Qx = वस्तु X की प्रारम्भिक मांग मात्रा
Py = वस्तु Y की प्रारम्भिक कीमत

6.9 बोध प्रश्न

1. माँग की कीमत लोच क्या है?
2. माँग की आय लोच क्या है?
3. समलोचदार माँग क्या होती है?

6.10 सारांश

आर्थिक सिद्धान्त में लोच की धारणा को सर्वप्रथम मार्शल ने प्रस्तुत किया। वस्तु के मूल्य में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाला आनुपातिक परिवर्तन की माप ही, माँग की लोच होती है। वस्तु की कीमत में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन के कारण उस वस्तु की माँगी गयी मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन के अनुपात को माँग की कीमत लोच कहते हैं। वस्तु के मूल्य में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप वस्तु की माँग में होने वाले परिवर्तन की सापेक्षता के आधार पर माँग की मूल्य लोच को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है। मांग की कीमत लोच मापने की तीन विधियाँ प्रयोग में लायी जाती हैं। मांग की आय लोच हमें यह बताती है कि किसी की आय में एक निश्चित परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी किसी वस्तु के लिये माँग में कितना प्रतिशत परिवर्तन होता है।एक वस्तु की कीमत परिवर्तन से अन्य वस्तु की मांग मात्रा में परिवर्तन मांग की तिरछी लोच को दर्शाता है।

6.11 शब्दावली

लोच – परिवर्तन की प्रतिक्रिया

6.12 संदर्भ ग्रंथ

1. Principles of Micro Economics	Mansfield
2. A Text Book of Economic Theory	Stonier & Hague
3. Microeconomic Theory	A.P. Lerner
4. A Revision of Demand Theory	J.R. Hicks

6.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1 – वस्तु की कीमत में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन के कारण उस वस्तु की माँगी गयी मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन के अनुपात को माँग की कीमत लोच कहते हैं।

उत्तर 2 – मांग की आय लोच हमें यह बताती है कि किसी की आय में एक निश्चित परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी किसी वस्तु के लिये माँग में कितना प्रतिशत परिवर्तन होता है।

उत्तर 3 – वस्तु की मांग में सापेक्षिक परिवर्तन, उसकी कीमत में सापेक्षिक परिवर्तन के बराबर होता है।

6.14 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. माँग की कीमत लोच को परिभाषित करते हुए इसको मापने की विधि की व्याख्या करिये।

2. माँग की आय तथा तिरछी लोच क्या होती है? विस्तार से बताइये।

खण्ड–2
उत्पादन, लागत सिद्धांत एवं बाजार

खण्ड–2 इकाई–1

उत्पादन फलन, परिर्वतनशील अनुपात का नियम

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 उत्पादन फलन

1.3 उत्पादन फलन के रूप

1.4 कुल उत्पाद [Total Production]

1.5 औसत उत्पादन [Average Production]

1.6 सीमांत उत्पादन [Marginal Production]

1.7 परिवर्तनशील अनुपात का नियम

1.7.1 मान्यताएं

1•7•2 परिवर्तनशील अनुपात के नियम की अवस्थाएं

1.8 बोध प्रश्न

1.9 सारांश

1.10 शब्दावली

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्नलिखित अवधारणाओं को समझ सकेंगे –

- उत्पादन फलन तथा इसके विभिन्न रूप क्या हैं?
- कुल उत्पाद, औसत उत्पाद तथा सीमांत उत्पाद क्या होते हैं?
- परिवर्तनशील अनुपात का नियम क्या होता है?

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई विद्यार्थियों को सुविधाजनक तरीके से उत्पादन की धारणाओं को समझाया गया है। औसत उत्पादन, सीमांत उत्पाद तथा कुल उत्पाद को परिभाषित करते हुए परिवर्तनशील अनुपात के नियम की व्याख्या की गयी है।

1•2 उत्पादन फलन

उत्पादन के साधनों आगत तथा उत्पाद की मात्रा निर्गत के बीच पाये जाने वाले संबंध को उत्पादन फलन कहते हैं। यह साधनों तथा उत्पाद के बीच तकनीकी संबंध को प्रकट करता है। सांकेतिक रूप में उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है।

$$Q = f (L, K, l, E, T.....etc.)$$

जहाँ उत्पादन श्रमिक, पूँजी, साहसी तथा तकनीकी भूमि को प्रदर्शित करता है।

1•3 उत्पादन फलन के रूप

आर्थिक सिद्धांत में हम दो प्रकार के उत्पादन फलनों का अध्ययन करते हैं–

पहली वह स्थिति जिसमें उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर मानते हुए एक परिवर्तनशील साधन की मात्रा को बढ़ाने पर उत्पाद की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है इस प्रकार के उत्पादन फलन का अध्ययन **परिवर्तनशील अनुपात का नियम** के रूप में जाना जाता है।
द्वितीय स्थिति में उत्पादन के सभी साधनों को परिवर्तनशील मानते हुए उत्पादन फलन का अध्ययन **पैमाने के प्रतिफल** के रूप में किया जाता है।

1•4 कुल उत्पाद [Total Production]

उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त साधनों के प्रयोग के द्वारा प्राप्त होने वाले उत्पादन का योग कुल उत्पादन कहलाता है।

कुल उत्पादन = औसत उत्पादन **x** साधनों की इकाईयां

TP = AP x L

1•5 औसत उत्पादन [Average Production]

प्रति इकाई साधनों के प्रयोग से प्राप्त होने वाले उत्पादन को औसत उत्पादन कहते हैं।

औसत उत्पादन = कुल उत्पादन / कुल साधन

AP = TP/n

1•6 सीमांत उत्पादन [Marginal Production]

साधन की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन कार्य में प्रयोग के पश्चात कुल उत्पादन में होने वाला परिवर्तन ही सीमांत उत्पादन कहलाता है।

$$\mathbf{MP = TP_n - TP_{n-1}}$$

1•7 परिवर्तनशील अनुपात का नियम

यह नियम ऐसे उत्पादन फलन की व्याख्या करता है , जिसमें उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर रखकर किसी एक साधन की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है। इस स्थिति में परिवर्तनशील साधन तथा स्थिर साधनों का अनुपात बदल जाता है। इस नियम के अंतर्गत संसाधनों के अनुपात में परिवर्तन का अध्ययन करते हैं और इसे परिवर्तनशील अनुपात का नियम कहते हैं।

1•7•1 मान्यताएं

- उत्पादन के कुछ साधन इसके जैसे पूंजी तकनीकी तथा कुछ साधन परिवर्तनशील जैसे श्रम कच्चा माल आदि होते हैं।
- उत्पादन के साधनों में निरंतर वृद्धि होनी चाहिए।
- साधनों के बीच प्रतिस्थापन की क्रिया नहीं होनी चाहिए।

1•7•2 परिवर्तनशील अनुपात के नियम की अवस्थाएं

परिवर्तनशील अनुपात के नियम के अनुसार किसी परिवर्तनशील साधन की इकाईयों में वृद्धि करने पर उत्पादन में तीन अवस्थाएं उत्पन्न होती हैं–

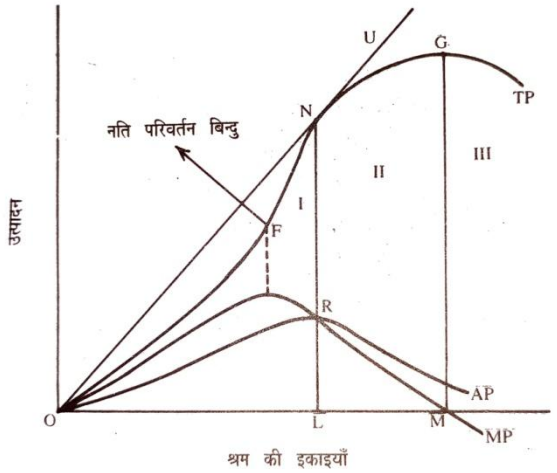

रेखाचित्र – 1.1

प्रथम अवस्था –

इस अवस्था में कुल उत्पाद तथा औसत उत्पाद निरंतर बढ़ता है लेकिन सीमांत उत्पाद एक बिंदु पर अधिकतम होकर घटना प्रारंभ कर देता है। प्रथम अवस्था में सीमांत उत्पाद सदैव औसत उत्पाद से अधिक होता है। यह अवस्था वहां समाप्त होती है जहां औसत उत्पाद वक्र उच्चतम बिंदु पर होता है ।
प्रथम अवस्था में स्थिर साधनों की मात्रा परिवर्तनशील साधनों से अधिक होती है जिससे परिवर्तनशील साधन बढ़ाने पर उत्पादन तेजी से बढ़ता है अतः इस अवस्था को **बढ़ते प्रतिफल की अवस्था** कहा जाता है , क्योंकि इसमें परिवर्तनशील साधन के औसत उत्पाद में लगातार वृद्धि होती है।

द्वितीय अवस्था –

दूसरी अवस्था में कुल उत्पादन घटती हुई दर से बढ़ता है और अधिकतम स्तर तक पहुंच जाता है। यहां दूसरी अवस्था समाप्त हो जाती है इस अवस्था में औसत उत्पाद तथा सीमांत उत्पाद दोनों घटते हैं परंतु दोनों धनात्मक रहते हैं अवस्था के अंत में सीमांत उत्पादन शून्य तथा कुल उत्पादन अधिकतम हो जाता है यह घटते प्रतिफल की अवस्था कही जाती है एक उत्पादक इसी अवस्था में उत्पादन करता है क्योंकि यहां साधनों की पूर्ण क्षमता का प्रयोग संभव होता है।

तृतीय अवस्था –

तीसरी अवस्था में कुल उत्पादन घटने लगता है परिणाम स्वरूप परिवर्तनशील साधन की सीमांत उत्पादकता आत्मक हो जाती है तथा सीमांत उत्पादकता रख के नीचे प्रवेश कर जाता है इस अवस्था को प्रार्थना करते हैं क्योंकि इसमें परिवर्तनशील साधन की सीमांत उत्पादकता ऋणात्मक हो जाती है।

1.8 बोध प्रश्न

1. उत्पादन फलन क्या होता है?

2. सीमांत उत्पाद क्या होता है?

1.9 सारांश

उत्पादन के साधनों आगत तथा उत्पाद की मात्रा निर्गत के बीच पाये जाने वाले संबंध को उत्पादन फलन कहते हैं। यह साधनों तथा उत्पाद के बीच तकनीकी संबंध को प्रकट करता है। उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त साधनों के प्रयोग के द्वारा प्राप्त होने वाले उत्पादन का योग कुल उत्पादन कहलाता है। परिवर्तनशील अनुपात का नियम ऐसे उत्पादन फलन की व्याख्या करता है , जिसमें उत्पादन के अन्य साधनों को स्थिर रखकर किसी एक साधन की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है। इस स्थिति में परिवर्तनशील साधन तथा स्थिर साधनों का अनुपात बदल जाता है।परिवर्तनशील अनुपात के नियम के अनुसार किसी परिवर्तनशील साधन की इकाईयों में वृद्धि करने पर उत्पादन में तीन अवस्थाएं उत्पन्न होती है।

1.10 शब्दावली

औसत उत्पाद– प्रति इकाई साधनों के प्रयोग से प्राप्त होने वाले उत्पादन को औसत उत्पादन कहते हैं।

सीमांत उत्पाद– साधन की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन कार्य में प्रयोग के पश्चात कुल उत्पादन में होने वाला परिवर्तन ही सीमांत उत्पादन कहलाता है।

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1.	Modern Micro Economics	A. Koustsoyiannis
2.	Principles of Micro Economics	Mansfield
3.	A Text Book of Economic Theory	Stonier & Hague
4.	Microeconomic Theory	A.P. Lerner
5.	A Revision of Demand Theory	J.R. Hicks
6.	Measurement of Utility	Tapas Majumdar
7.	Principles of Economics,6^{th} edition,	A. Marshall
8.	Value and Capital	J.R. Hicks
9.	Mathematical Psychics	Y. F. Edgeworth
10.	Welfare and Competition	T. Scitovsky

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 उत्तर – उत्पादन के साधनों आगत तथा उत्पाद की मात्रा निर्गत के बीच पाये जाने वाले संबंध को उत्पादन फलन कहते हैं। यह साधनों तथा उत्पाद के बीच तकनीकी संबंध को प्रकट करता है।

2 उत्तर – साधन की एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन कार्य में प्रयोग के पश्चात कुल उत्पादन में होने वाला परिवर्तन ही सीमांत उत्पादन कहलाता है।

1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. परिवर्तनशील अनुपात के नियम को परिभाषित करते हुए इसकी सभी अवस्थाओं को उचित रेखाचित्र के माध्यम से समझाइये।

खण्ड–2 इकाई–2

पैमाने का प्रतिफल एवं लागत की अवधारणाएँ

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 पैमाने का प्रतिफल
    2.2.1 पैमाने का वृद्धिमान प्रतिफल
    2.2.2 पैमाने का ह्रासमान प्रतिफल
    2.2.3 पैमाने का समता प्रतिफल नियम
2.3 लागत की अवधारणाएँ
2.4 लागत के प्रकार
    2.4.1 कुल लागत
    2.4.2 औसत लागत
    2.4.3 सीमान्त लागत
2.5 स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतें
2.6 अवसर लागत
2.7 वास्तविक लागत
2.8 निजी , वाह्य एवं सामाजिक लागतें
2.9 लागत फलन
    2.9.1 अल्पकालीन लागत फलन
    2.9.2 दीर्घकालीन लागत वक्र
2.10 बोध प्रश्न
2.11 सारांश
2.12 शब्दावली
2.13 संदर्भ ग्रंथ
2.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप समझ सकेंगे कि —

- पैमाने का प्रतिफल क्या होता है?
- लागत की विभिन्न अवधारणाएं क्या हैं?
- लागत के प्रकार क्या हैं?
- लागत फलन तथा लागत वक्र के विभिन्न स्वरूप क्या हैं?

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में पैमाने के प्रतिफल की व्याख्या करने के साथ साथ लागत की विभिन्न अवधारणाओं को समझाया गया है। लागत फलन के संदर्भ में अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन फलन को उचित रेखाचित्रों के साथ समझाया गया है।

2.2 पैमाने का प्रतिफल

दीर्घकालीन उत्पादन फलन के सन्दर्भ में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं, अतः सभी लागतें भी परिवर्तनशील होती हैं। सभी साधनों की मात्रा में वृद्धि होने पर उत्पादन का पैमाना काफी बड़ा हो जाता है, इसलिये इसे हम पैमाने का प्रतिफल भी कहते हैं।

साधनों में β गुना परिवर्तन करने पर उत्पादन α- गुना परिवर्तित होता है। अतः उत्पादन फलन —

$$Q = f\ (L, K)$$

$$K)$$

इस प्रकार , यदि —

$\alpha = \beta$ हो तो पैमाने का स्थिर /समता प्रतिफल

$\alpha > \beta$ हो तो , पैमाने का वर्धमान प्रतिफल

$\alpha < \beta$ हो तो , पैमाने का ह्रासमान प्रतिफल

2.2.1 पैमाने का वृद्धिमान प्रतिफल—

इस स्थिति में उत्पादन के साधनों में जिस अनुपात से परिवर्तन करते हैं,उत्पादन उससे अनेपात में परिवर्तित होता है और लागतों में कमी आती है; अतः इसे ' लागत ह्रसमान नियम ' भी कहते हैं। वर्धमान प्रतिफल के प्रमुख कारण श्रम उन्नत तकनीकी है।

2.2.2 पैमाने का ह्रासमान प्रतिफल–

इस स्थिति में साधनों की मात्रा में जिस अनुपात से परिवर्तन करते हैं, उत्पादन में वृद्धि क्रमशः उससे कम अनुपात में होती है, परन्तु साधनों की बढ़ती हुई मात्रा का प्रयोग करते हैं , जिससे लागतें बढ़ती हुई होती हैं , अतः इसे 'लागत वृद्धिमान नियम' भी कहते हैं । पैमाने के घटते प्रतिफल का कारण बड़े पैमाने के उत्पादन में प्रबन्ध, समन्वय तथा नियंत्रण सम्बन्धी कठिनाइयों का उत्पन्न हो जाना है।

2.2.3 पैमाने का समता प्रतिफल नियम –

इस स्थिति में उत्पादन के साधनों में जिस अनुपात में वृद्धि की जाती है, उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि होती है, जो पैमाने के समता प्रतिफल को दर्शाता है। उत्पादन की समान मात्रा की प्राप्ति हेतु साधनों मे क्रमशः समान मात्रा में वृद्धि करते हैं, इसलिए लागतें भी समान होती हैं, जिसे लागत समता नियम कहते हैं।

2.3 लागत की अवधारणाएँ

उत्पादन के साधनों पर होने वाला सम्पूर्ण व्यय ही लागत कहलाता है। लागत एक व्युत्पन्न फलन है क्योंकि लागत का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उत्पादन के साधनों से होता है पर हम सामान्यतः लागत को उत्पादन का फलन मानते हैं।

$C = f(Q)$

2.4 लागत के प्रकार

2.4.1 कुल लागत (TC)-

एक निश्चित समय में कुल उत्पादन के लिये प्रयुक्त सभी साधनों पर होने वाले सम्पूर्ण व्यय के योग को कुल लागत कहते हैं।

कुल लागत = औसत लागत × उत्पादन की कुल मात्रा

2.4.2 औसत लागत (AC)-

यह प्रति इकाई उत्पादन हेतु साधनों पर होने वाले व्यय को प्रदर्शित करता है।

औसत लागत = कुल लागत /उत्पादन की कुल मात्रा

2.4.3 सीमान्त लागत (Marginal Cost)-

वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन करने पर कुल लागत में जो वृद्धि होती है, 'उसे सीमान्त लागत ' कहते है।। यह कुल लागत में परिवर्तन को दर्शाता है।

$$MC_n = TC_n - TC_{n-1}$$

जहाँ MC_n = n वीं इकाई की सीमान्त लागत।

2.5 स्पष्ट तथा अस्पष्ट लागतें

जब उत्पादन प्रक्रिया में उत्पादन , साधनों को बाहर से क्रय करके प्रयोग करता है, तो इस स्थिति में साधनों पर किया गया व्यय ही प्रत्यक्ष या स्पष्ट लागत कहलाता है। इसके विपरीत यदि उत्पादक जिन साधनों को निजी रूप से प्रयोग करता है, उन साधनों की लागत को अस्पष्ट लागत कहते हैं।

2.6 अवसर लागत

इसे वैकल्पिक लागत भी कहते हैं। प्रायः उत्पादन के साधन एक समय में एक से अधिक कार्य करने में दक्ष होते हैं परन्तु वे एक समय में एक ही कार्य करते हैं। तथा अन्य का त्याग करते हैं। अतः किसी वस्तु की अवसर लागत वह अन्य सर्वोतम वैकल्पिक वस्तु है, जिसका परित्याग किया जाता है।

2.7 वास्तविक लागत

प्रो0 मार्शल के अनुसार – ' उत्पादन में निहित श्रमिकों के सभी प्रकार के प्रयास एवं पूंजी बचत के लिये आवश्यक सभी प्रकार की प्रतीक्षायें , ही मिलकर वास्तविक लागत कहलाती हैं।

2.8 निजी , वाह्य एवं सामाजिक लागतें

निजी लागत से अभिप्राय किसी वस्तु के उत्पादन हेतु उम्पादक द्वारा किये गये खर्च से है, जबकि उत्पादन प्रक्रिया द्वारा समाज / अन्य लोगों को पहुँचने वाला लाभ / हानि के कारण वाह्य लागत उत्पन्न होती है। सामाजिक लागत इन दोनों लागतों का योग होती है।

सामाजिक लागत = निजी लागत +वाह्य लागत

2.9 लागत फलन

लागत फलन वस्तु की उत्पादन –लागत और उत्पादन की मात्रा के सम्बन्ध को दर्शाता है। कीमत सिद्धान्त में दो प्रकार के लागत फलनों का अध्ययन किया जाता है–

(i) अल्पकालीन लागत फलन

(ii) दीर्घकालीन लागत फलन

2.9.1 अल्पकालीन लागत फलन –

अल्पकाल में प्रायः उत्पादन के कुछ साधन स्थिर तथा कुछ साधन परिवर्तनशील होते हैं। अतः अल्पकाल में कुछ लागते स्थिर तथा कुछ परिवर्तनशील होती हैं–

(a) **कुल स्थिर लागत (TFC)-**

अल्पकाल में स्थिर साधनों पर होने वाले सम्पूर्ण व्यय को कुल स्थिर लागत कहते हैं। यह उत्पादन मात्रा के शून्य रहने पर भी अल्पकाल में धनात्मक बना रहता है, क्योंकि उत्पादन मात्रा से यह स्वतंत्र रहता है।

रेखाचित्र – 2.1

(b) कुल परिवर्तनशील लागत (TVC)-

परिवर्तनीय साधनों पर होने वाले सम्पूर्ण व्यय का योग ही कुल परिवर्तनीय लागत कहलाता है। यह उत्पादन की मात्रा से प्रभावित होता है। उत्पादन शून्य मात्रा पर यह भी शून्य होता है तथा उत्पादन मात्रा बढ़ने पर बढ़ता है।

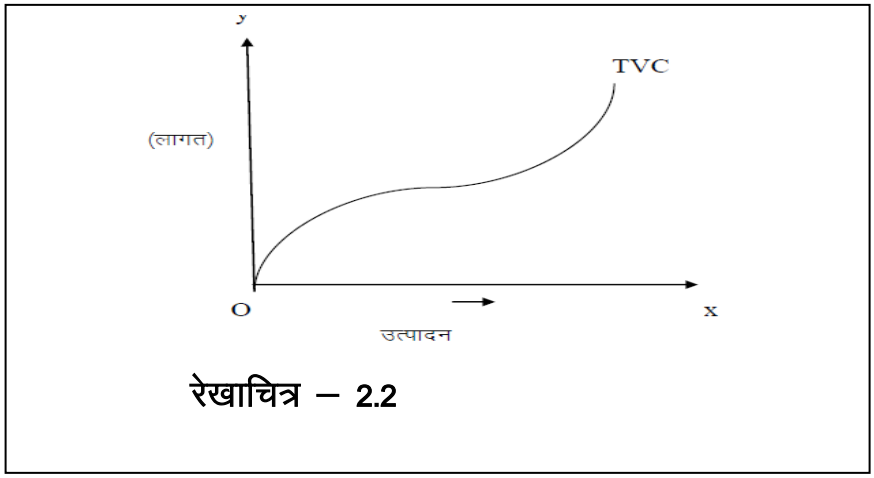

रेखाचित्र – 2.2

(c) कुल लागत (TC)–

अल्पकाल में कुल लागत का मान कुल स्थिर लागत (TFC) तथा कुल परिवर्तनीय लागत (TVC) के योग के बराबर होता है।

TC = TFC + TVC

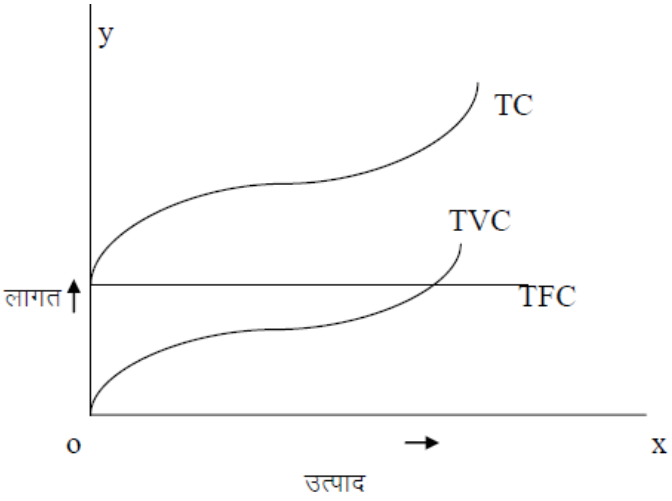

रेखाचित्र – 2.3

(d) औसत स्थिर लागत (AFC)-

यह उत्पादन की प्रति इकाई स्थिर लागत हैं। अर्थात् कुल स्थिर लागत को कुल उत्पादन मात्रा से भाग देने पर औसत स्थिर लागत प्राप्त होती है। AFC वक्र की आकृति आयताकार अतिपरवलय होती है।

औसत स्थिर लागत = कुल स्थिर लागत / उत्पादन की कुल मात्रा

AFC = TFC/Q

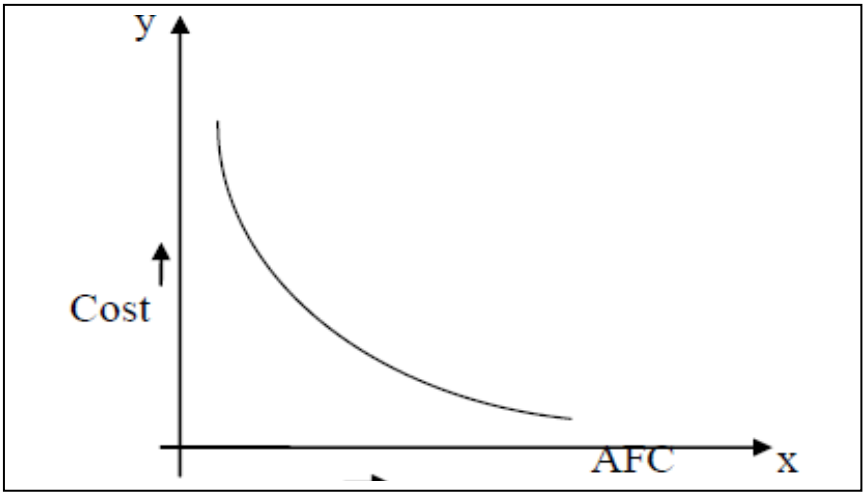

(e) औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) –

कुल परिवर्तनीय ागत को वस्तु की कुल उत्पादन मात्रा से भाग देने पर औसत परिवर्तनशील लागत (AVC) प्राप्त होती है।

AVC = TVC/Q

कुछ सीमा तक AVC बढ़ते प्रतिफल के कारण घटती है तथा न्यूनतम लागत बिन्दु के बाद उत्पादन बढ़ने लगती हैं क्योंकि ह्रासमान प्रतिफल क्रियाशील हो जाता है।

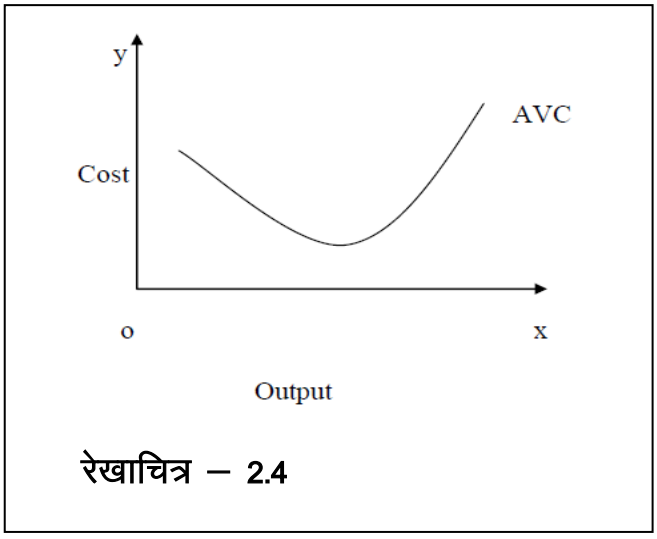

रेखाचित्र – 2.4

(f) <u>औसत कुल लागत (ATC)-</u>

औसत कुल लागत या औसत लागत, कुछ लागत को वस्तु की कुल उत्पादन मात्रा से भाग देकर प्राप्त किया जाता है। अतः

$$ATC = TC/Q$$

या $$ATC = \frac{(TFC + TVC)}{Q}$$

$$ATC = \frac{TFC}{Q} + \frac{TVC}{Q}$$

अतः $$ATC = AFC + AVC$$

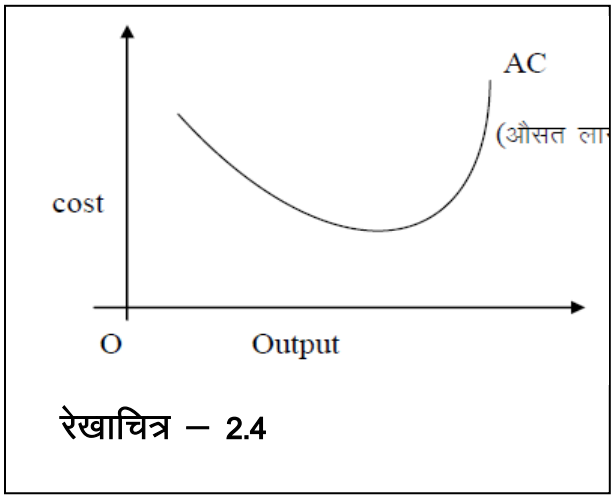

रेखाचित्र – 2.4

❖ **<u>सीमान्त लागत वक्र –</u>**

चूँकि सीमान्त लागत कुल लागत में परिवर्तन को दर्शाती है, अतः

$$MC = \Delta TC/\Delta Q$$

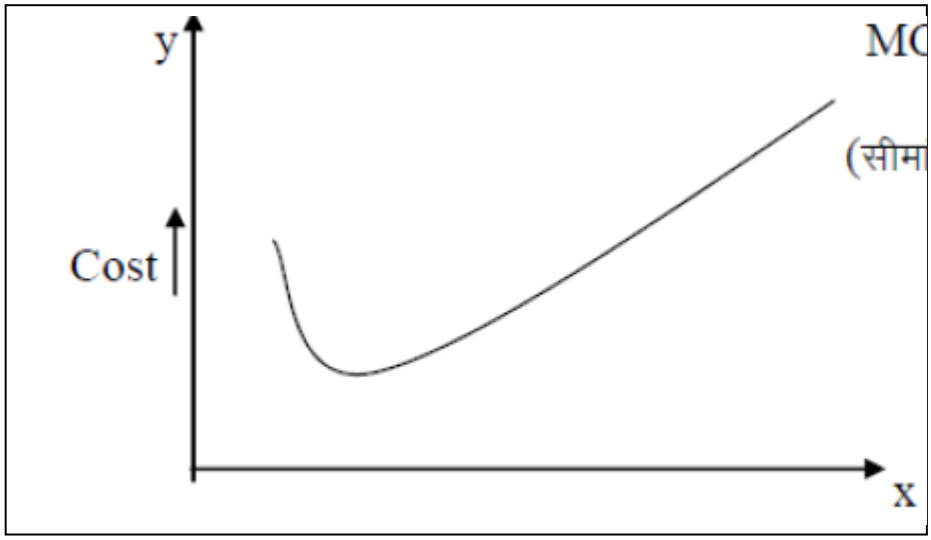

सीमान्त लागत तथा औसत लागत में सम्बन्ध –

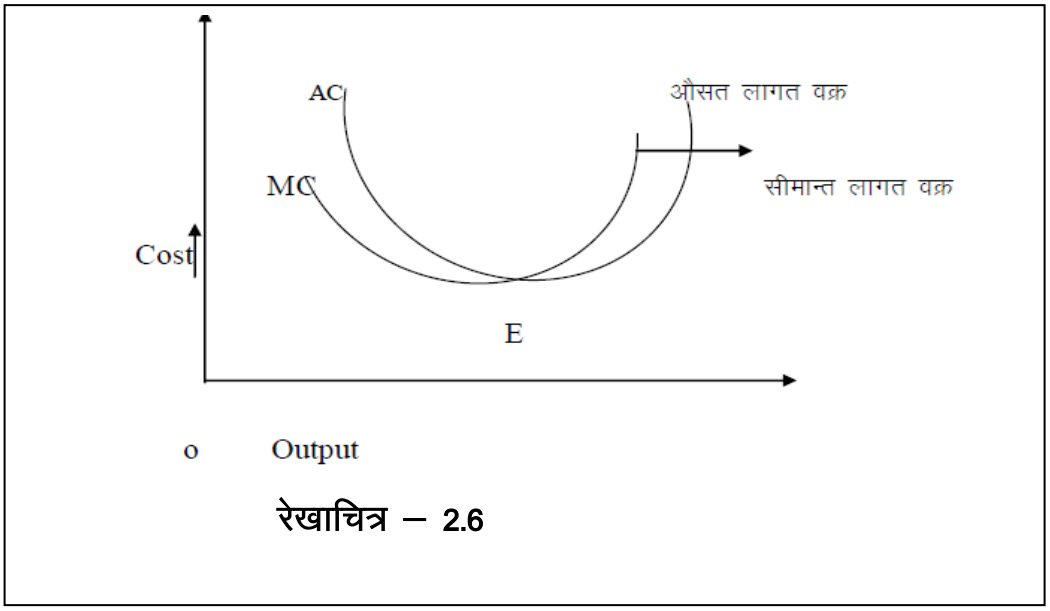

रेखाचित्र – 2.6

I.

II. AC > MC –जब AC घटता है, तब MC भी कम होता है परन्तु AC का मान MC से

III. अधिक होता है।

IV. AC = MC - जब AC न्यूनतम होता है, तो MC वक्र, AC वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु पर नीचे से ऊपर की और काटता है।

V. AC < MC - जब AC बढ़ता है तो MC भी बढ़ता है परन्तु MC का मान , AC से अधिक होता है।

❖ **औसत कुल लागत वक्र (ATC) , औसत परिवर्तनीय लागत वक्र(AVC) तथा औसत स्थिर लागत (AFC) में सम्बन्ध –**

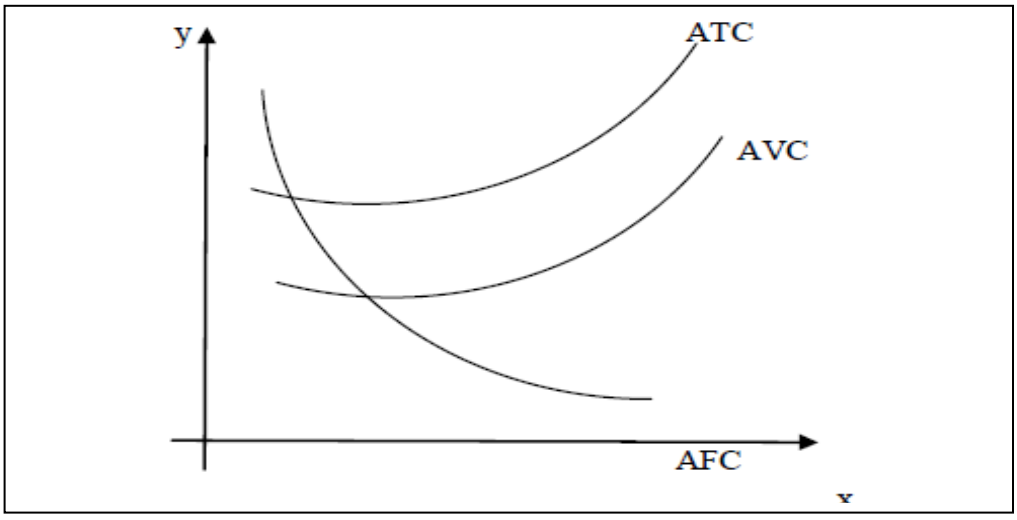

औसत कुल लागत वक्र की आकृति औसत परविर्तनशील लागत वक्र और औसत लागत वक्र के व्यवहार पर निर्भर करती है । आरम्भ में औसत परिवर्तनशील लागत और औसत स्थिर लागत नीचे गिरते हैं तथा औसत कुल लागत वक्र भी तेजी से नीचे गिरता है।

जब औसत परिवर्तनशील लागता ऊपर को बढ़ना प्रारम्भ करता है, लेकिन औसत स्थिर लागत वक्र तेजी से नीचे गिर रहा होता है तो औसत कुल लागत वक्र नीचे गिरना जारी रहता है।

जब उत्पादन निरंतर बढ़ता है तो औसत परिवर्तनशील लागत अधिक तीव्रता से बढ़ती है और औसत स्थिर लागत में गिरावट की गति से अधिक हो जाती है तो औसत कुल लागत वक्र भी बढ़ना प्रारम्भ कर देता है।

2.9.2 दीर्घकालीन लागत वक्र

दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं तथा सभी लागतें भी परिवर्तनीय होती हैं। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र, सभी अल्पकालीन औसत लागत वक्रों को स्पर्श करता हुहा होता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र उत्पादन के सभी स्तरों से सम्बन्धित न्यूनतम सम्भावित औसत को दर्शाता है।

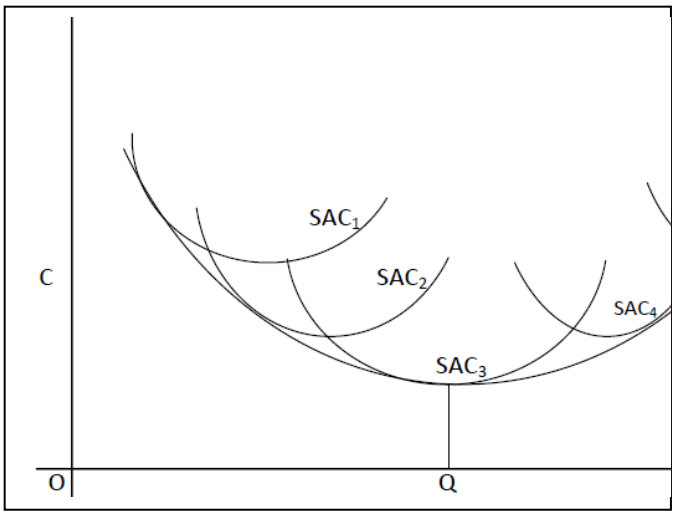

- जब प्रारम्भ में LAC (दीर्घकालीन औसत लागत वक्र) गिरता है, तो वह SAC (अल्पकालीन औसत लागत वक्र) के गिरते हुये भाग को स्पर्श करता है।
- जब LAC न्यूनतम होता है तो वह SAC के न्यूनतम भाग को स्पर्श करता है।
- जब LAC बढ़ता है तो वह SAC के बढ़ते हुये भाग को स्पर्श करता है।

2.10 बोध प्रश्न

1. पैमाने के वृद्धिमान प्रतिफल क्या होते हैं?

2. पैमाने का समता प्रतिफल क्या है?

3. अवसर लागत से आप क्या समझते हैं?

4. वस्तविक लागत क्या होती है?

2.11 सारांश

दीर्घकालीन उत्पादन फलन के सन्दर्भ में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं, अतः सभी लागतें भी परिवर्तनशील होती हैं। सभी साधनों की मात्रा में वृद्धि होने पर उत्पादन का पैमाना काफी बड़ा हो जाता है, इसलिये इसे हम पैमाने का प्रतिफल भी कहते हैं।उत्पादन के साधनों पर होने वाला सम्पूर्ण व्यय ही लागत कहलाता है। लागत एक व्युत्पन्न फलन है क्योंकि लागत का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उत्पादन के साधनों से होता है पर हम सामान्यतः लागत को उत्पादन का फलन मानते हैं।

2.12 शब्दावली

औसत लागत – कुछ लागत को वस्तु की कुल उत्पादन मात्रा से भाग देकर प्राप्त किया जाता है

2.13 संदर्भ ग्रंथ

1.	Welfare and Competition	T. Scitovsky
2.	The Economics of Imperfect Competition	Joan Robinson
3.	Imperfect Competition and Excess Capicity	N. Kaldor
4.	Monoplistic and Imperfect Competition	N. Kaldor
5.	Microeconomic Theory	C.F. Ferguson
6.	The Theory of Monopolistic Competitiion	E.H.Chamberlin
7.	Price and Welfare Theory	James E. Hibdon
8.	Monopolistic Competition and General Equilibrium Theory	R. Triffin

2.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. – इस स्थिति में उत्पादन के साधनों में जिस अनुपात से परिवर्तन करते हैं,उत्पादन उससे अनुपात में परिवर्तित होता है और लागतों में कमी आती है ।

उत्तर 2. – इस स्थिति में उत्पादन के साधनों में जिस अनुपात में वृद्धि की जाती है, उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि होती है।

उत्तर 3. – किसी वस्तु की अवसर लागत वह अन्य सर्वोतम वैकल्पिक वस्तु है, जिसका परित्याग किया जाता है।

उत्तर 4. – उत्पादन में निहित श्रमिकों के सभी प्रकार के प्रयास एवं पूंजी बचत के लिये आवश्यक सभी प्रकार की प्रतीक्षायें , ही मिलकर वास्तविक लागत कहलाती हैं।

2.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पैमाने के प्रतिफल नियम की व्याख्या कीजिये।

2. लागत फलन को परिभाषित करते हुए अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन लागत फलन को उचित रेखाचित्रों के साथ समझाइये।

खण्ड 2 इकाई 3

बाजार का अर्थ और उसके विभिन्न रूप, तत्व एवम् वर्गीकरण

इकाई की रुपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 बाजार का अर्थ
3.3 बाजार का वर्गीकरण
3.3.1 क्षेत्र के आधार पर
3.3.2 समय के आधार पर
3.4 प्रतियोगिता के आधार बाजार का वर्गीकरण
3.4.1 शुद्ध तथा पूर्ण प्रतियोगिता
3.4.2 शुद्ध एकाधिकार
3.4.3 अपूर्ण प्रतियोगिता
3.4.4 एकाधिकारिक प्रतियोगिता
3.4.5 अल्पाधिकार
3.4.6 द्वयाधिकार
3.5 बाजार के अन्य रूप
3.6 बोध प्रश्न
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 संदर्भ ग्रंथ
3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद समझ सकेंगे कि –

- बाजार क्या होता है?
- बाजार के विभिन्न वर्गीकृत रूप क्या हैं?

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में बाजार को परिभाषित करते हुए उसके वर्गीकरण पर प्रकाश डाला गया है। बाजार के वर्गीकरण के विभिन्न आधारों पर चर्चा की गयी है, जिससे विद्यार्थियों को आगामी इकाईयों को समझने में सहायता प्राप्त होगी।

3.2 बाजार का अर्थ

बाजार शब्द का प्रयोग उस स्थान विशेष के लिए किया जाता है, जहां वस्तुओं के क्रेता तथा विक्रेता इकट्ठा होकर अपनी–अपनी वस्तुओं के क्रय तथा विक्रय का कार्य करते हैं ।

कूर्नो के अनुसार – बाजार शब्द से आशय उस संपूर्ण क्षेत्र से है, जिसमें वस्तु के समस्त क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच इस प्रकार स्वतंत्र संपर्क होता है कि वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति शीघ्रता एवं सुगमता से समान होने की पाई जाती है।

बाजार के बारे में सिडविक के मतानुसार, "बाजार व्यक्तियों के समूह/समुदाय को कहते हैं जिनके बीच इस प्रकार से व्यापारिक संबंध हों कि प्रत्येक व्यक्ति को सुगमता से इस बात का पूर्ण ज्ञान हो जाए कि दूसरे व्यक्ति समय–समय पर वस्तु एवं सेवाओं का विनिमय किन मूल्यों पर करते हैं।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बाजार एक व्यापक क्षेत्र है जिसमें किसी विशेष वस्तु के क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच प्रतियोगिता होती है ।

3.3 बाजार का वर्गीकरण

अर्थशास्त्र में बाजार का वर्गीकरण अर्थशास्त्रियों द्वारा विभिन्न आधार पर किया जाता है–

3.3.1 क्षेत्र के आधार पर –

क्षेत्र के आधार पर बाजार के चार वर्गीकृत रूप हैं–

- स्थानीय बाजार
- प्रादेशिक/क्षेत्रीय बाजार
- राष्ट्रीय बाजार
- अंतर्राष्ट्रीय बाजार

3.3.2 समय के आधार पर –

समय के आधार पर समय के आधार पर बाजार को चार रूप में वर्गीकृत किया गया है–

- अति अल्पकालीन बाजार (Very short period Market)
- अल्पकालीन बाजार (Short period Market)
- दीर्घकालीन बाजार (Long Period Market)

- अति दीर्घकालीन बाजार (Veru Long Period Market)

3.4 प्रतियोगिता के आधार बाजार का वर्गीकरण

बाजार में पाई जाने वाली प्रतियोगिता, बाजार के वर्गीकरण का सबसे प्रमुख आधार है। इसके अंतर्गत बाजार में वस्तुओं की पूर्ति करने वाली फर्म की संख्या के आधार पर बाजार को वर्गीकृत किया जाता हैं। इस प्रकार हमें कई स्थितियां देखने को मिलती हैं –

3.4.1 शुद्ध तथा पूर्ण प्रतियोगिता (Pure and Perfect Competition) –

जब बाजार में फर्मों की संख्या अपरिमित होती है तथा साथ ही साथ क्रेताओं की भी बहुत अधिक संख्या मौजूद हो और कोई भी क्रेता या विक्रेता व्यक्तिगत रूप से इतना शक्तिशाली न हो कि वह बाजार में प्रचलित कीमत को प्रभावित कर सके। ऐसी स्थिति में उद्योग पूर्ण प्रतियोगिता में होता है।

इसके साथ साथ सभी को बाजार का पूर्ण ज्ञान होता है वस्तुओं की प्रवृत्ति सहजातीय होती है बाजार में फर्मों के प्रवेश तथा बहिर्गमन पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। बाजार में वस्तु का एक ही मूल्य प्रचलित होता है जिसे सभी स्वीकार करते हैं। इस प्रकार के बाजार में वस्तु विभेद तथा यातायात लागत नहीं पाई जाती है । शुद्ध प्रतियोगिता, पूर्ण प्रतियोगिता का ही एक संकुचित रूप है जिसमें एकाधिकार पूरी तरह से अनुपस्थित होता है।

3.4.2 शुद्ध एकाधिकार (Pure Monopoly) –

जब बाजार में प्रचलित वस्तु का एकमात्र उत्पादक हो तथा वस्तु का कोई निकट स्थानापन्न उपलब्ध ना हो तो इस स्थिति को शुद्ध एकाधिकार बाजार करते हैं । जो विशुद्ध प्रतियोगिता की परस्पर विपरीत स्थिति है। बाजार में वस्तु की पूर्ति की शक्तियां मात्र एक विक्रेता के पास केंद्रित होती हैं।

प्रोफेसर बोल्डिंग के अनुसार – शुद्ध एकाधिकारी फर्म वह फर्म है, जो कि कोई ऐसी वस्तु उत्पादित कर रही है जिसका किसी अन्य फर्म की उत्पादित वस्तुओं में कोई प्रभावपूर्ण स्थानापन्न नहीं हो। एकाधिकारी इस स्थिति में होता है कि वह विक्रेताओं से अपनी वस्तु के लिए अलग–अलग मूल्य प्राप्त कर सकता है। इसे विभेदात्मक एकाधिकार कहा जाता है।

3.4.3 अपूर्ण प्रतियोगिता (Imperfect Competition) –

इस बाजार की अवधारणा का प्रतिपादन श्रीमती जॉन रॉबिंसन ने किया। यह अवधारणा फर्मों की संख्या के आधार पर एकाधिकारिक प्रतियोगिता के अनुरूप है। इसमें वस्तु विभेद नहीं पाया जाता है।

3.4.4 एकाधिकारिक प्रतियोगिता (Monopolistic Competition) –

यह एकाधिकार तथा प्रतियोगिता का मिश्रित रूप होता है। एकाधिकारिक प्रतियोगिता में पूर्ण प्रतियोगिता की सभी विशेषताएं पाई जाती हैं, सिर्फ एक को छोड़कर वह यह कि पूर्ण प्रतियोगिता में सभी फर्में एक ही वस्तु की सहजातीय तथा समरूप इकाइयों का उत्पादन करती हैं। जबकि एकाधिकारिक प्रतियोगिता में सभी फर्में

एक ही वस्तु की अलग–अलग किस्मों का उत्पादन करती हैं। प्रत्येक फर्म अपनी वस्तु की ब्रांड के संबंध में एकाधिकारी होती है तथा सभी फर्मों की उत्पादित वस्तुयें एक दूसरे की नजदीकी स्थानापन्न भी होती है। अतः फर्में बाजार में परस्पर प्रतियोगी भी होती हैं।

3.4.5 अल्पाधिकार (Oligopoly) –

इस प्रकार के बाजार में फर्मों की संख्या बहुत कम (2 से 10 के बीच) पाई जाती है तथा विक्रेताओं के मध्य पारस्परिक निर्भरता महत्वपूर्ण हो जाती है। प्रत्येक फर्म अपने प्रतिद्वंदी की प्रतिक्रिया के प्रति संवेदनशील होती है। फर्मों के मध्य प्रतिद्वंदिता उच्च होती है, जब तक कि वह कोई कपट पूर्ण संधि ना कर ले।

अल्पाधिकार में उत्पादित वस्तुओं सहजातीय तथा विभेदित दोनों प्रकार की हो सकती है सहजातीय वस्तु युक्त अल्पाधिकार को **शुद्ध अल्पाधिकार** तथा विभेदित वस्तुओं वाले अल्पाधिकार को **विभेदित अल्पाधिकार** कहते हैं।

3.4.6 द्वयाधिकार (Duopoly) –

जब बाजार में वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों की संख्या दो हो तो इसे **द्वयाधिकार** कहते हैं। द्वयाधिकार के संबंध में दो मॉडल पाए जाते हैं –

- **गैर प्रतिक्रिया मॉडल –** इसमें प्रतिद्वंदी फर्म की उपभोक्ताओं की मूल्य जा मात्रा के संबंध में प्रतिक्रिया का फर्म को आभास नहीं होता है।
- **प्रतिक्रियात्मक मॉडल** – इसी स्थिति में दोनों फर्मो की क्रियाएं पर निर्भर होती हैं तथा वे आपस में गला काट प्रतिद्वंदिता से बचने का प्रयास करती हैं।

3.5 बाजार के अन्य रूप

- **क्रेता अधिकार–** जब वस्तु या साधन बाजार में अकेला क्रेता हो।
- **द्विपक्षीय एकाधिकार**– बाजार में वस्तु का एक ही क्रेता तथा एक विक्रेता हो तो उसे द्विपक्षीय एकाधिकार करते हैं।
- **स्वाभाविक एकाधिकार**– यह पैमाने की मितव्ययिता के कारण उत्पन्न होता है इस स्थिति में वस्तु के एक से अधिक पूर्तिकर्ता/उत्पादक की आवश्यकता नहीं होती है अर्थात यह स्वाभाविक रूप से उत्पन्न एकाधिकार है।

बाजार के वर्गीकरण के तत्व– उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि बाजार के वर्गीकरण के आधार स्वरूप प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं–

- फर्म की संख्या
- वस्तु विभेद का अंश
- प्रवेश की शर्त

3.6 बोध प्रश्न

1. बाजार से आप क्या समझते हैं।

2. द्वायाधिकार क्या है?

3. अल्पाधिकार क्या है?

4. पूर्ण प्रतियोगिता से आप क्या समझते हैं?

3.7 सारांश

बाजार एक व्यापक क्षेत्र है जिसमें किसी विशेष वस्तु के क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच प्रतियोगिता होती है । बाजार में पाई जाने वाली प्रतियोगिता, बाजार के वर्गीकरण का सबसे प्रमुख आधार है। इसके अंतर्गत बाजार में वस्तुओं की पूर्ति करने वाली फर्म की संख्या के आधार पर बाजार को वर्गीकृत किया जाता हैं।

3.8 शब्दावली

क्रेता अधिकार– जब वस्तु या साधन बाजार में अकेला क्रेता हो।

द्विपक्षीय एकाधिकार– बाजार में वस्तु का एक ही क्रेता तथा एक विक्रेता हो तो उसे द्विपक्षीय एकाधिकार करते हैं।

3.9 संदर्भ ग्रंथ

1.	Welfare and Competition	T. Scitovsky
2.	The Economics of Imperfect Competition	Joan Robinson
3.	Imperfect Competition and Excess Capicity	N. Kaldor
4.	Monoplistic and Imperfect Competition	N. Kaldor
5.	Microeconomic Theory	C.F. Ferguson
6.	The Theory of Monopolistic Competitiion	E.H.Chamberlin
7.	Price and Welfare Theory	James E. Hibdon
8.	Monopolistic Competition and General Equilibrium Theory	R. Triffin

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. बाजार शब्द से आशय उस संपूर्ण क्षेत्र से है, जिसमें वस्तु के समस्त क्रेताओं तथा विक्रेताओं के बीच इस प्रकार स्वतंत्र संपर्क होता है कि वस्तु की कीमत की प्रवृत्ति शीघ्रता एवं सुगमता से समान होने की पाई जाती है।

उत्तर 2. जब बाजार में वस्तुओं का उत्पादन करने वाली फर्मों की संख्या दो हो तो इसे **द्वयाधिकार** कहते हैं।

उत्तर 3. इस प्रकार के बाजार में फर्मों की संख्या बहुत कम (2 से 10 के बीच) पाई जाती है तथा विक्रेताओं के मध्य पारस्परिक निर्भरता महत्वपूर्ण हो जाती है।

उत्तर 4. जब बाजार में फर्मों की संख्या अपरिमित होती है तथा साथ ही साथ क्रेताओं की भी बहुत अधिक संख्या मौजूद हो और कोई भी क्रेता या विक्रेता व्यक्तिगत रूप से इतना शक्तिशाली न हो कि वह बाजार में प्रचलित कीमत को प्रभावित कर सके। ऐसी स्थिति में उद्योग पूर्ण प्रतियोगिता में होता है।

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बाजार को परिभाषित करते हुए अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन बाजार पर टिप्पणी कीजिये।

खण्ड 2 इकाई 4

पूर्ण प्रतियोगिता, विशुद्ध एकाधिकार एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिताएं : अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 पूर्ण प्रतियोगिता

4.2.1 परिभाषा

4.2.2 विशेषताए

4.3 शुद्ध एकाधिकार

4.3.1 परिभाषा

4.3.2 विशेषताए

4.4 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता

4.3.1 परिभाषा

4.3.2 विशेषताए

4.5 बोध प्रश्न

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 संदर्भ ग्रंथ

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम समझ सकेंगे –

- पूर्ण प्रतियोगिता की परिभाषा एवं विशेषताएं।
- शुद्ध एकाधिकार की परिभाषा एवं विशेषताएं।
- एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की परिभाषा एवं विशेषताएं।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में पूर्ण प्रतियोगिता, शुद्ध एकाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की परिभाषा तथा विशेषताओं का वर्णन किया गया है, जिसके अध्ययन के बाद विधार्थी आधारभूत अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।

4.2 पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की एक ऐसी स्थिति होती है, जहाँ पर क्रेताओं और विक्रेताओं की अत्यधिक संख्या होती है तथा व्यक्तिगत रूप से कोई भी क्रेता या विक्रेता इतना शक्तिशाली नहीं होता कि वह बाजार में प्रचलित कीमत को प्रभावित कर सके। प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता को बाजार का पूर्ण ज्ञान रहता है।

4.2.1 परिभाषा–

श्रीमती जॉन रॉबिंसन के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन की मांग पूर्णतया लोचदार हो अर्थात विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक हो। इसमें किसी एक उत्पादक का उत्पादन वस्तु के कुल उत्पादन का एक बहुत थोड़ा भाग होता है तथा सभी ग्राहक प्रतियोगी विक्रेताओं के बीच चुनाव करने की दृष्टि से समान होते हैं, जिससे कि बाजार पूर्ण हो जाता है।

4.2.2 विशेषताएं –

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में विद्यमान प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है–

- बाजार में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या अत्यधिक होती है।
- बाजार में क्रेता तथा विक्रेता स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं तथा उनके पास बाजार के बारे में संपूर्ण जानकारी होती है।
- उद्योग की सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुओं सहजातीय एवं पूर्ण स्थानापन्न होती हैं उनमें किसी प्रकार का विभेद नहीं पाया जाता है।
- पूर्ण प्रतियोगिता के इस स्थिति में उद्योग की प्रैक्टिस फर्म प्रवेश तथा बहिर्गमन हेतु स्वतंत्र होती है।
- उत्पादन के साधन पूर्णतया गतिशील होते हैं अर्थात साधनों को एक रोजगार से दूसरे रोजगार में जाने की स्वतंत्रता होती है ।
- पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादित वस्तुओं की परिवहन लागत तथा विक्रय लागत शून्य होती है ।
- बाजार में उत्पादित वस्तुओं हेतु तिरछी मांग की लोच तथा मूल्य मांग की लोच का मान अनंत होता है।

4.3 शुद्ध एकाधिकार (Monopoly)

यह बाजार की ऐसी स्थिति होती है, जिसमें वस्तु की पूर्ति पर मात्र एक विक्रेता का नियंत्रण होता है। अर्थात् ऐसा बाजार जिसमें एक मात्र विक्रेता होता है, वही फर्म तथा उद्योग दोनों की भूमिका मे होता है। और बाजार की पूर्ति–उत्पादन एवं कीमत पर उसका पूर्ण नियंत्रण हो, ऐसे बाजार को **एकाधिकार** कहते हैं।

4.3.1 परिभाषा–

प्रो बोल्डिंग के अनुसार, शुद्ध एकाधिकारी फर्म वह फर्म है जो कि कोई ऐसी वस्तु उत्पादित कर रही है जिसका किसी अन्य फर्म की उत्पादित वस्तुओं में कोई प्रभावपूर्ण स्थानापन्न नहीं हो। **प्रो लर्नर के अनुसार**, एकाधिकार से आशय उस विक्रेता से है जिसका मांग वक्र गिरता हुआ होता है।

चैंबरलिन के मत में, एकाधिकारी उसे समझना चाहिए जो किसी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण रखता हो।

4.3.2 विशेषताएं–

शुद्ध एकाधिकार की महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्न हैं–

- बाजार में अकेला विक्रेता होता है ।
- बाजार में वस्तु की पूर्ति तथा कीमत पर विक्रेता का पूर्ण नियंत्रण होता है।
- बाजार में उत्पादित वस्तुओं की निकट स्थानापन्न वस्तु का अभाव होता है तथा तिर्यक/आड़ी माँग की लोच का मान शून्य होता है।
- उद्योग में फर्म के प्रवेश तथा बहिर्गमन पर प्रतिबंध होता है।
- दो बाजारों के बीच अत्यधिक दूरी पायी जाती है।
- एकाधिकार की स्थिति में मूल्य विभेद संभव होता है अर्थात् विक्रेता वस्तु की विभिन्न इकाईयों को अलग अलग मूल्य पर बेच सकता है।

4.4 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता (Monopolistic Competition)

पूर्ण प्रतियोगिता तथा शुद्ध एकाधिकार की स्थिति सामान्यतः दैनिक जीवन में देखने को नहीं मिलती है बल्कि इन दोनों के बीच की स्थिति देखने को प्राप्त होती है जिसे, प्रो चौम्बरलिन ने 1933 ई में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता तथा श्रीमती जॉन रोबिंसन ने अपूर्ण प्रतियोगिता कहा।

4.4.1 परिभाषा–

प्रो चैम्बरलिन के अनुसार, बाजार में न तो पूर्णतया सहजातीय तथा न ही पूर्णतया विभेदित वस्तुयें पायी जायेंगी बल्कि इन दोनों के बीच की स्थिति देखने को मिलेगी। इस प्रकार के बाजार को एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता कहते हैं, जहाँ वस्तुयें विभेदित होते हुए भी परस्पर निकट स्थानापन्न होंगी।

4.4.2 विशेषतायें–

- समूह में क्रेताओं तथा विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है।

- बाजार में वस्तुओं की माँग की लोच तथा तिर्यक माँग की लोच इकाई से अधिक होगी।
- बाजार में वस्तुएँ परस्पर विभेदित होते हुए भी एक दूसरे की निकट स्थानापन्न होंगी।
- बाजार में फर्मों का आवागमन सरल होता है।
- फर्में सदैव अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती हैं।
- माँग वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है।
- बाजार में वस्तुओं की विक्रय/विज्ञापन लागत पायी जाती है।

4.5 बोध प्रश्न

1. पूर्ण प्रतियोगिता क्या है ?

2. शुद्ध एकाधिकार क्या है ?

3. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता से आप क्या समझते हैं ?

4.6 सारांश

श्रीमती जॉन रॉबिंसन के अनुसार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन की मांग पूर्णतया लोचदार हो अर्थात विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक हो।ऐसा बाजार जिसमें एक मात्र विक्रेता होता है, वही फर्म तथा उद्योग दोनों की भूमिका मे होता है। और बाजार की पूर्ति–उत्पादन एवं कीमत पर उसका पूर्ण नियंत्रण हो, ऐसे बाजार को **एकाधिकार** कहते हैं।पूर्ण प्रतियोगिता तथा शुद्ध एकाधिकार की स्थिति सामान्यतः दैनिक जीवन में देखने को नहीं मिलती है बल्कि इन दोनों के बीच की स्थिति देखने को प्राप्त होती है जिसे, प्रो चौम्बरलिन ने 1933 ई में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता तथा श्रीमती जॉन रोबिंसन ने अपूर्ण प्रतियोगिता कहा।

4.7 शब्दावली

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता – इस प्रकार के बाजार को एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता कहते हैं, जहाँ वस्तुयें विभेदित होते हुए भी परस्पर निकट स्थानापन्न होंगी।

4.8 संदर्भ ग्रंथ

1.	Welfare and Competition	T. Scitovsky
2.	The Economics of Imperfect Competition	Joan Robinson
3.	Imperfect Competition and Excess Capicity	N. Kaldor
4.	Monoplistic and Imperfect Competition	N. Kaldor
5.	Microeconomic Theory	C.F. Ferguson
6.	The Theory of Monopolistic Competitiion	E. H. Chamberlin

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की एक ऐसी स्थिति होती है, जहाँ पर क्रेताओं और विक्रेताओं की अत्यधिक संख्या होती है तथा व्यक्तिगत रूप से कोई भी क्रेता या विक्रेता इतना शक्तिशाली नहीं होता कि वह बाजार में प्रचलित कीमत को प्रभावित कर सके। प्रत्येक क्रेता तथा विक्रेता को बाजार का पूर्ण ज्ञान रहता है।

उत्तर 2. ऐसा बाजार जिसमें एक मात्र विक्रेता होता है, वही फर्म तथा उद्योग दोनों की भूमिका मे होता है। और बाजार की पूर्ति–उत्पादन एवं कीमत पर उसका पूर्ण नियंत्रण हो, ऐसे बाजार को **एकाधिकार** कहते हैं।

उत्तर 3. प्रो चैम्बरलिन के अनुसार, बाजार में न तो पूर्णतया सहजातीय तथा न ही पूर्णतया विभेदित वस्तुयें पायी जायेंगी बल्कि इन दोनों के बीच की स्थिति देखने को मिलेगी। इस प्रकार के बाजार को एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता कहते हैं, जहाँ वस्तुयें विभेदित होते हुए भी परस्पर निकट स्थानापन्न होंगी।

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पूर्ण प्रतियोगिता, शुद्ध एकाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की परिभाषा तथा विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

खण्ड 2

इकाई 5

पूर्ण प्रतियोगिता, विशुद्ध एकाधिकार एवं एकाधिकारात्मक प्रतियोगिताओं के औसत एवं सीमांत आगम वक्र तथा माँग वक्र

इकाई की रुपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 पूर्ण प्रतियोगिता में औसत तथा सीमांत आगम वक्र

5.3 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का माँग वक्र

5.4 एकाधिकार में माँग वक्र

5.5 एकाधिकार में औसत तथा सीमांत आगम वक्र

5.6 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के औसत आगम, सीमांत आगम तथा माँग वक्र

5.7 बोध प्रश्न

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 संदर्भ ग्रंथ

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद हम समझ सकेंगे –

पूर्ण प्रतियोगिता में औसत तथा सीमांत आगम वक्र और फर्म का माँग वक्र।

एकाधिकार में औसत तथा सीमांत आगम वक्र और फर्म का माँग वक्र।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में औसत तथा सीमांत आगम वक्र और फर्म का माँग वक्र।

5.1 प्रस्तावना

मौजूदा इकाई में बाजार में फर्म के व्यवहार के अध्ययन के संदर्भ में पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में औसत तथा सीमांत आगम वक्र और फर्म के माँग वक्र की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

5.2 पूर्ण प्रतियोगिता में औसत तथा सीमांत आगम वक्र [Average Revenue and Marginal Curve under Perfect Competition]-

पूर्ण प्रतियोगिता में कार्यरत फर्में व्यक्तिगत स्तर पर उत्पादित वस्तु की कीमत निर्धारित करने में असमर्थ होती हैं क्योंकि उस उद्योग में इतनी बड़ी संख्या में फर्में होती हैं कि वाह अकेली फर्म अपनी कीमत और उत्पादन मात्रा संबंधी नीतियों और निर्णयों द्वारा अपनी उत्पादित वस्तु की कीमत में कोई अंतर नहीं ला सकती, जबकि वह बाजार में प्रचलित कीमत पर उत्पादन की असीमित मात्रा बेचने के लिए स्वतंत्र है। इस प्रकार स्पष्ट है कि फर्म के औसत आगम का वक्र आधार अक्ष के समानांतर सरल रेखा होगी।

पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत या औसत आय वस्तु की अतिरिक्त इकाइयां बेचने पर स्थिर रहती है तो सीमांत आय, औसत आय के बराबर होगी अर्थात पूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम वक्र ही सीमांत आगम वक्र होगा।

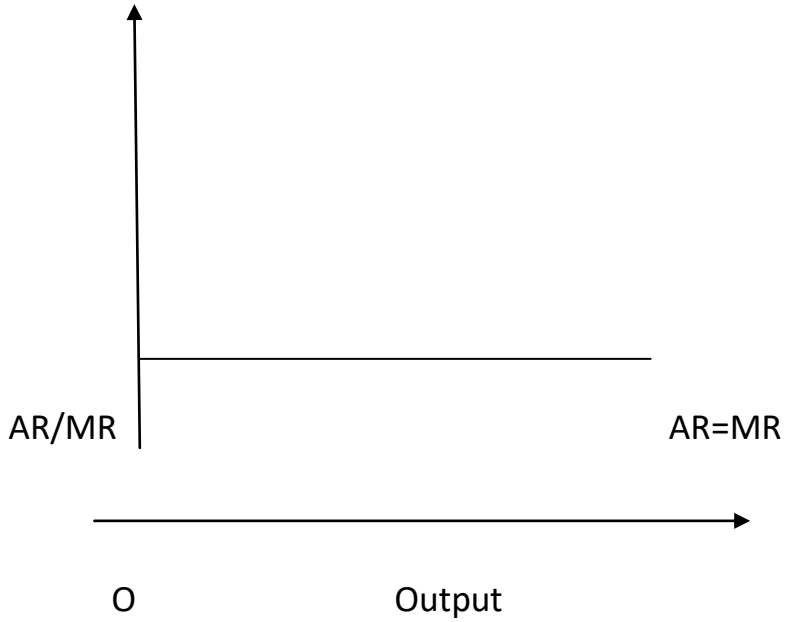

रेखाचित्र - 5.1

इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता में सीमांत आगम का औसत आगम के समान रहने की स्थिति में सीमांत आगम वक्र तथा औसत आगम वक्र एक ही होंगे।

5.3 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का माँग वक्र

पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत पदार्थ वस्तु की केवल एक ही कीमत निर्धारित होती है तथा एक व्यक्तिगत फर्म के पदार्थ का मांग वक्र उसके औसत आगम वक्र के समान होता है । पूर्णतया लोचदार मांग वक्र यह व्यक्त करता है कि फर्म का पदार्थ की कीमत पर कोई प्रभाव नहीं है और वह प्रचलित कीमत पर असीमित मात्रा बेच सकती है। संलग्न रेखाचित्र से स्पष्ट है की बाजार में मांग मात्रा के परिवर्तन के अनुरूप समायोजित कीमतों के अनुसार हर व्यक्ति स्तर पर औसत आय या मांग वक्र पर पदार्थ का विक्रय करती है।

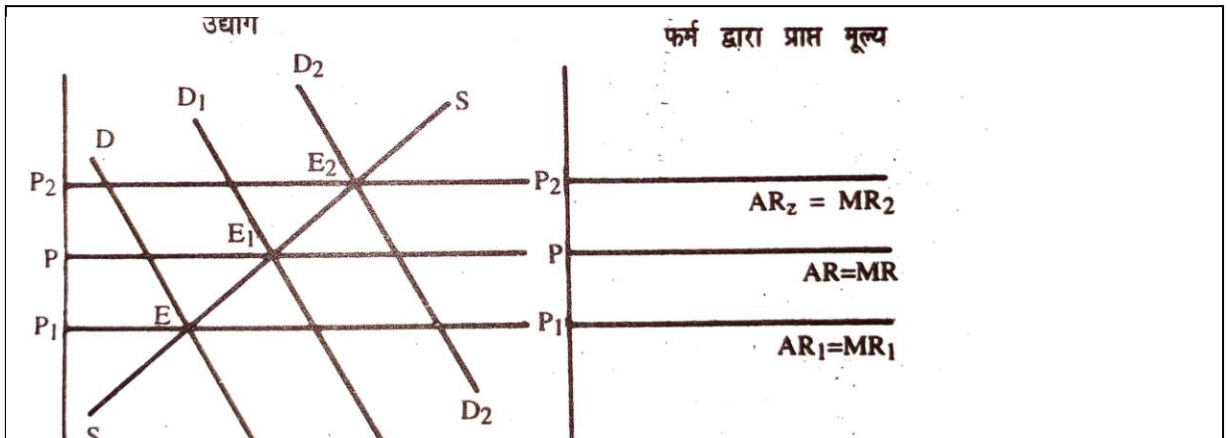

5.4 एकाधिकार में माँग वक्र

एकाधिकार में एक ही फर्म के होने के कारण उपभोक्ताओं की समस्त माँग एकाधिकारी के लिये होती है। चूंकि एक वस्तु के लिए उपभोक्ताओं का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है इसलिये एकाधिकारी का माँग वक्र भी नीचे की ओर गिरता हुआ ऋणात्मक ढाल वाला होगा।

एकाधिकारी को उपरोक्त स्थिति के संगत अपनी विक्री बढ़ाने के लिये कीमतें कम करनी होंगी तथा कीमतें बढ़ाने पर विक्री में कमी करनी पड़ती है।

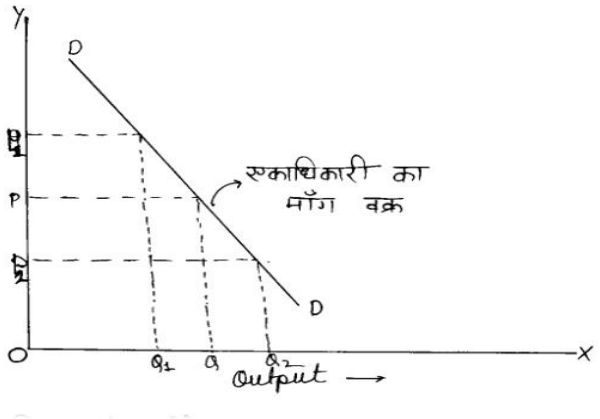

रेखाचित्र - 5.3

5.5 एकाधिकार में औसत तथा सीमांत आगम वक्र [Average and Marginal Revenue Curve under Monopoly]–

एकाधिकारी के लिए उसका माँग वक्र ही उसका औसत आगम वक्र होता है। माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होने के कारण एकाधिकार का औसत आय वक्र भी नीचे की ओर गिरता हुआ होगा परिणामस्वरूप सीमांत आगम वक्र भी औसत आगम वक्र के नीचे स्थित होगा जो कि अवसर तथा सीमांत मात्राओं में सामान्य संबंध के अनुसार है।

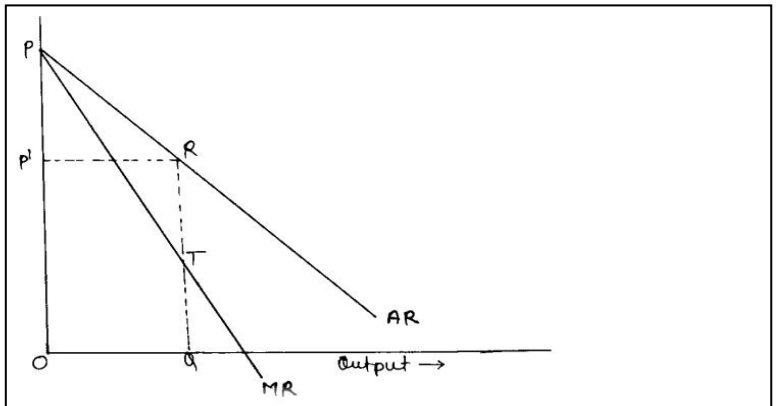

रेखाचित्र - 5.4

5.6 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता के औसत आगम, सीमांत आगम तथा माँग वक्र [Average, Marginal and Demand Curve under Imperfect Competition]

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ ऋणात्मक ढाल वाला होगा तथा यह माँग वक्र ही फर्म का औसत आगम (AR) वक्र होगा, तथा सीमांत आगम (MR) वक्र फर्म के औसत आगम वक्र के नीचे स्थित होगा।

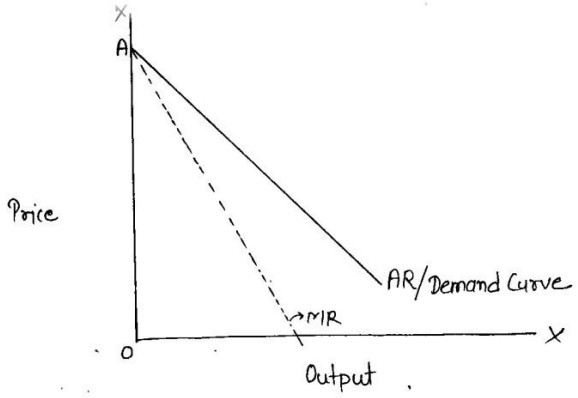

रेखाचित्र - 5.5

5.7 बोध प्रश्न

1. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का माँग वक्र कैसा होता है?

2. एकाधिकारी के माँग वक्र के ढाल की प्रवृत्ति कैसी होती है?

5.8 सारांश

पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत या औसत आय वस्तु की अतिरिक्त इकाइयां बेचने पर स्थिर रहती है तो सीमांत आय, औसत आय के बराबर होगी अर्थात पूर्ण प्रतियोगिता में औसत आगम वक्र ही सीमांत आगम वक्र होगा। एकाधिकार में एक ही फर्म के होने के कारण उपभोक्ताओं की समस्त माँग एकाधिकारी के लिये होती है। चूंकि एक वस्तु के लिए उपभोक्ताओं का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ होता है इसलिये एकाधिकारी का माँग वक्र भी नीचे की ओर गिरता हुआ ऋणात्मक ढाल वाला होगा। एकाधिकारी के लिए उसका माँग वक्र ही उसका औसत आगम वक्र होता है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म का माँग वक्र नीचे की ओर गिरता हुआ ऋणात्मक ढाल वाला होगा तथा यह माँग वक्र ही फर्म का औसत आगम (AR) वक्र होगा, तथा सीमांत आगम (MR) वक्र फर्म के औसत आगम वक्र के नीचे स्थित होगा।

5.9 शब्दावली

ऋणात्मक ढाल – नीचे की ओर गिरता हुआ

5.10 संदर्भ ग्रंथ

1. Welfare and Competition	T. Scitovsky
2. The Economics of Imperfect Competition	Joan Robinson
3. Imperfect Competition and Excess Capicity	N. Kaldor
4. Monoplistic and Imperfect Competition	N. Kaldor
5. Microeconomic Theory	C.F. Ferguson
6. The Theory of Monopolistic Competitiion	E.H.Chamberlin

5.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1. पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत पदार्थ वस्तु की केवल एक ही कीमत निर्धारित होती है तथा एक व्यक्तिगत फर्म के पदार्थ का मांग वक्र उसके औसत आगम वक्र के समान होता है।

उत्तर 2. एकाधिकारी का माँग वक्र भी नीचे की ओर गिरता हुआ ऋणात्मक ढाल वाला होगा।

5.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में औसत तथा सीमांत आगम वक्र और फर्म के माँग वक्र को रेखाचित्र के माध्यम से समझाइये।

खण्ड 3

इकाई–1

पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत एवं उत्पादन निर्धारण : अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन अल्पाधिकार

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना

1.2 पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत निर्धारण
1.3 उद्योग द्वारा कीमत निर्धारण
1.4 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की संस्थिति
1.5 अल्पकाल में फर्म का संतुलन
1.5.1 असामान्य लाभ (Abnormal Profit)
1.5.2 सामान्य लाभ (Normal Profit)
1.5.3 हानि (Loss)
1.5.4 तालाबंदी बिंदु (Shutdown point)
1.6 दीर्घ काल में फर्म का संतुलन
1.7 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का संतुलन
1.7.1 अल्पकाल में उद्योग का संतुलन
1.7.2 दीर्घ काल में उद्योग का संतुलन
1.8 बोध प्रश्न
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 संदर्भ ग्रंथ
1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि –

- पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत का निर्धारण कैसे होता है?
- पूर्ण प्रतियोगी उद्योग द्वारा संतुलन कीमत कैसे निर्धारित होती है?
- पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की संस्थिति अल्पकाल और दीर्घकाल में किस प्रकार निर्धारित होती है?

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में पूर्ण प्रतियोगिता जो कि बाजार का एक महत्वपूर्ण प्रकार है, के बारे में बताया गया है। यह इकाई मुख्यतः पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत और उत्पादन निर्धारण की विस्तृत जानकारी प्रदान करती है। पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग द्वारा कीमत का निर्धारण किस प्रकार माँग वक्र तथा पूर्ति वक्र की सहायता से किया जाता है, यह हम इस इकाई में आगे समझेंगे। तथा उद्योग द्वारा कीमत निर्धारण के साथ साथ पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की संस्थिति के आधारभूत सिद्धांतों को भी आप समझ सकेंगे। इसकेके साथ साथ हम अल्प काल और दीर्घ काल में फर्म के संतुलन की व्याख्या भी इस इकाई में करेंगे, जिसकी सहायता से विधार्थी इस इकाई में पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म को होने वाले लाभ तथा हानि की स्थिति से अवगत हो सकेंगे।

1.2 पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत निर्धारण

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत का निर्धारण किसी एक फर्म के द्वारा नहीं होता है बल्कि सहजातीय वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करने वाले उद्योग के द्वारा स्वतंत्र रूप से मूल्य का निर्धारण, बाजार की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा किया जाता है। इस प्रकार उद्योग मूल्य का निर्धारण करती है तथा फर्में इस निर्धारित मूल्य पर वस्तुओं का विक्रय करती हैं। यह मूल्य, संतुलन मूल्य होता है। यदि इसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन होता है तो मांग एवं पूर्ति की शक्तियां इतनी अधिक लोचशील होती हैं कि पुनः परस्पर क्रिया करके संतुलन मूल्य स्थापित कर देती हैं।

1.3 उद्योग द्वारा कीमत निर्धारण

उद्योग द्वारा कीमत का निर्धारण उद्योग के मांग वक्र तथा पूर्ति वक्र की सहायता से किया जाता है। उद्योग का पूर्ति वक्र उद्योग की फर्मों की व्यक्तिगत पूर्ति वक्रों का क्षैतिज योग होता है, जो बाएं से दाएं ऊपर की ओर उठता हुआ होगा। जबकि उद्योग का मांग वक्र , जो बाजार में वस्तु की मांग को दर्शाता है वह बाएं से दाएं नीचे की ओर गिरता हुआ ढाल दर्शाता है। उद्योग का मांग वक्र विभिन्न मूल्यों पर उत्पादित वस्तु की मांग को दर्शाता है।

पूर्ण प्रतियोगिता में मांग वक्र तथा पूर्ति वक्र के समन्वय द्वारा संतुलन कीमत प्राप्त होती है।

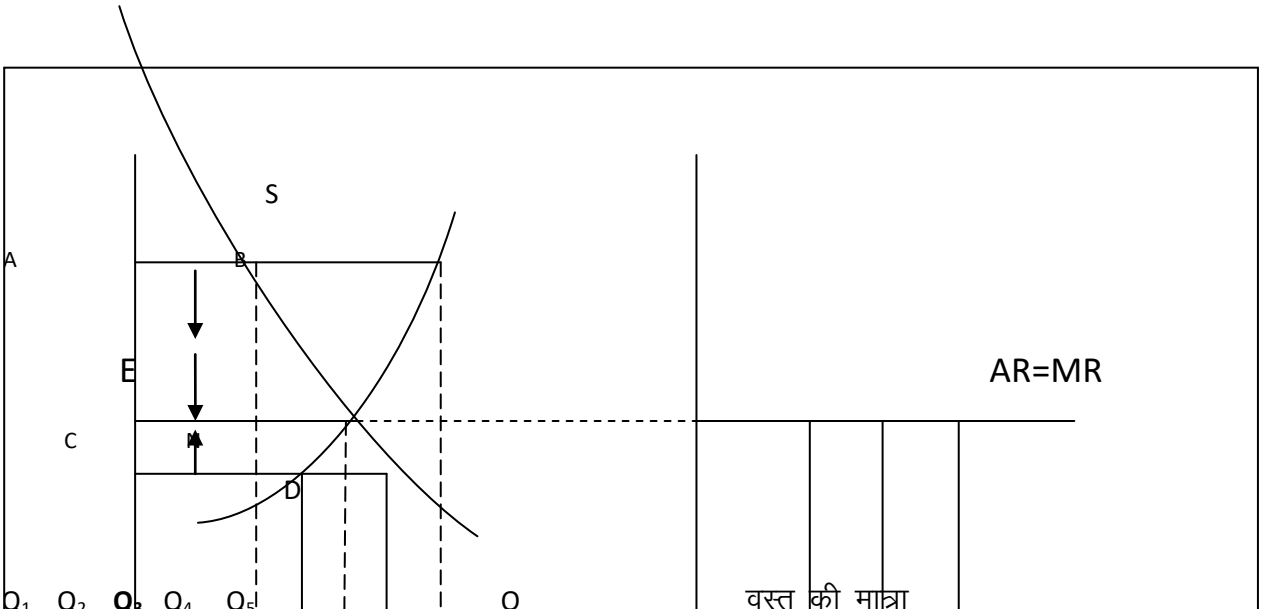

उपरोक्त रेखाचित्र में DD तथा SS दोनों E बिंदु पर बराबर हैं । OP_5 उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत है, जिसे सभी फर्मे स्वीकार करेंगी। यही कीमत फर्मों के व्यक्तिगत औसत तथा सीमांत आगम वक्र को दर्शाएगी।

1.4 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की संस्थिति –

पूर्ण प्रतियोगिता में कर्म के लिए मूल्य उद्योग द्वारा निर्धारित रहता है। अत: फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से अपनी लागत को न्यूनतम करने का प्रयास करती है तथा संतुलन को प्राप्त करती है। इस संदर्भ में लाभ अधिकतम करने के दो प्रकार है–

(a) कुल आय (TR) तथा कुल लागत (TC) के आधार पर–

फर्म को संतुलन की स्थिति में अधिकतम लाभ प्राप्त होगा जब निम्नलिखित शर्तें पूरी हो

- जहां पर TR एवं TC का अंतर अधिकतम हो।
- जहां पर TR पर खींची गई स्पर्श रेखा TC पर खींची गई स्पर्श रेखा के समानांतर हो।

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत या औसत आय स्थिर होती है, इसलिए कुल आय में वृद्धि, बेची गई वस्तु के अनुपात में होती है इसलिए कुल आय (TR) वक्र 45° की सीधी रेखा होगा, जबकि कुल लागत (TC) वक्र अंग्रेजी के उलटे S आकार का होता है।

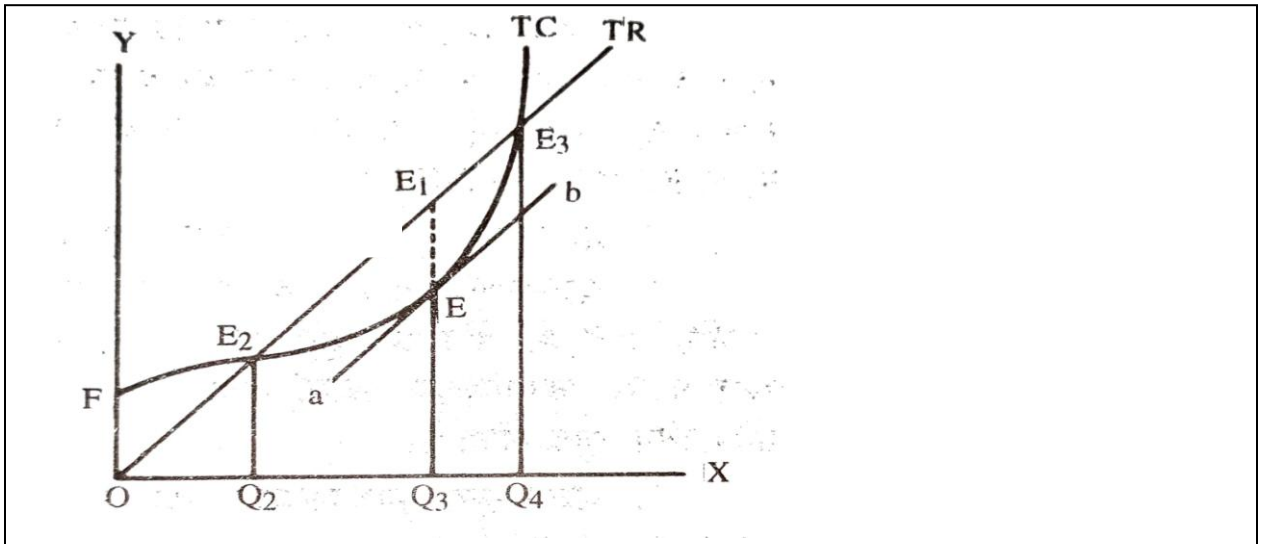

चित्र – 2

रेखा चित्र से स्पष्ट है कि उत्पादन के OQ_2 तथा OQ_4 स्तर पर लाभ शून्य है तथा उत्पादन के OQ_3 स्तर पर लाभ अधिकतम है, यहीं पर संतुलन की सभी शर्तें पूरी हो रही हैं।

(b) सीमांत आगम (MR) तथा सीमांत लागत (MC) के आधार पर–

फर्म को संतुलन की स्थिति तब प्राप्त होगी, जब वह निम्नलिखित शर्तें पूर्ण करेगी–

- सीमांत लागत का मान सीमांत आय के बराबर हो।
- MC वक्र का ढाल, MR वक्र के ढाल से अधिक हो।

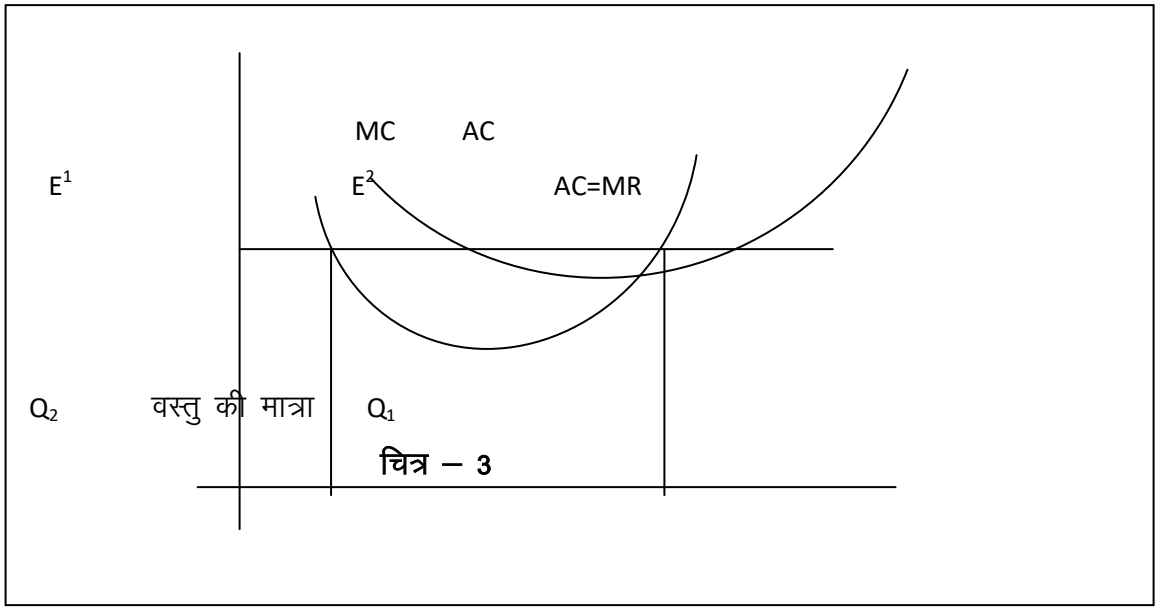

चित्र – 3

रेखाचित्र में E बिंदु पर संतुलन की स्थिति है जहां पर संतुलन से संबंधित सभी शर्तें पूरी हो रही हैं। E_1 बिंदु पर संतुलन स्थित नहीं है क्योंकि यहां MC वक्र का ढाल, MR वक्र के ढाल से कम है। यद्यपि की E_1 बिंदु पर MC का मान MR के बराबर है।

1.5 अल्पकाल में फर्म का संतुलन–

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में फर्में अल्पकाल में पूर्ति के अनुसार मांग का समायोजन नहीं कर पाती हैं। उन्हें अल्पकाल में असामान्य लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि तीनों का सामना करना पड़ता है ।

1.5.1 असामान्य लाभ (Abnormal Profit) –

अल्पकाल में फर्में असामान्य लाभ तब प्राप्त करेंगी, जब उनको प्राप्त कीमत/औसत आय उनकी औसत लागत से अधिक हो अर्थात् AR > AC की स्थिति हो।

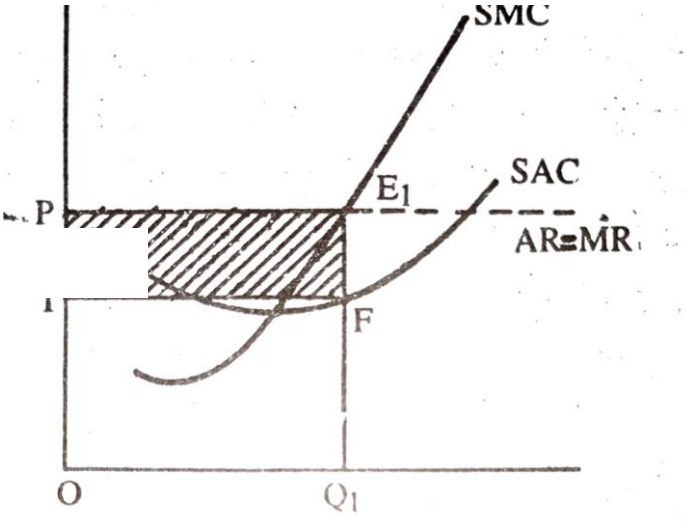

चित्र – 4

रेखाचित्र में संतुलन बिंदु E_1 है, जिससे संबंधित कीमत या औसत आय (AR) का मान औसत लागत से अधिक है तथा फर्म $PTFE_1$ के बराबर असामान्य लाभ अर्जित कर रही है।

1.5.2 सामान्य लाभ (Normal Profit)–

सामान्य लाभ की स्थिति में फर्में औसत लागत (AC) के बराबर कीमत या औसत आय (AR) प्राप्त करती है,अर्थात AR =AC=P

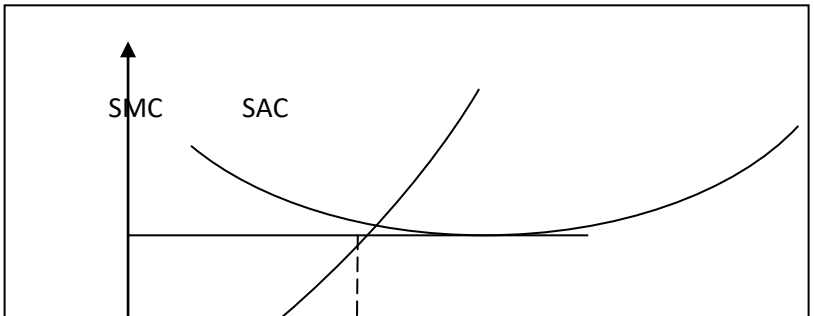

उपरोक्त रेखाचित्र में फर्म E बिंदु पर संतुलन में है, जहाँ पर OQ उत्पादन स्तर हेतु औसत लागत तथा औसत आगम समान है तथा फर्में सामान्य लाभ प्राप्त करती हैं।

1.5.3 हानि (Loss)-

अल्पकाल में फर्मों को हानि का सामना करना पड़ता है क्योंकि घर में अल्पकाल में समय कम होने के कारण लागतो में परिवर्तन नहीं कर पाती हैं इस स्थिति में फर्म को प्राप्त औसत आगम या कीमत औसत लागत से कम होती है अर्थात AR<AC → P<AC

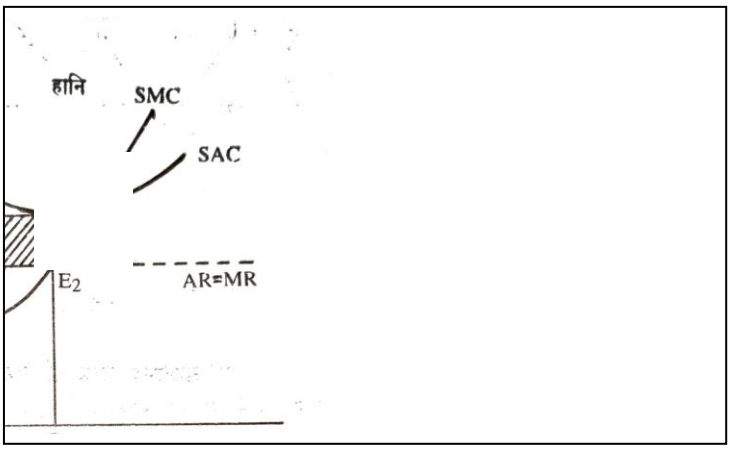

उपरोक्त रेखाचित्र से स्पष्ट है कि AR<AC तथा फर्म की कुल हानि PCTE के बराबर है

1.5.4 तालाबंदी बिंदु (Shutdown point) –

अल्पकाल में फर्म हानि की स्थिति में तभी तक उत्पादन करती हैं जब तक उसको मिलने वाली कीमत आवश्यक परिवर्तनीय लागत से अधिक हो इस स्थिति में फर्म औसत स्थिर लागत के बराबर हानि सहन करती है लेकिन जैसे ही आवश्यक परिवर्तनीय लागत कीमत के बराबर या उससे अधिक होती है फरमान में कार्य करना बंद कर देती है इसे shutdown point कहते हैं

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि औसत परिवर्तनीय लागत (AVC) का मान OP' है तथा संतुलन कीमत OP है। E बिंदु पर OP>OP' है अतः फर्म हानि में कार्य करेगी, लेकिन जैसे ही AVC का मान OP' से बढ़कर OP हो जाये, फर्म उत्पादन करना बंद कर देगी।

1.6 दीर्घ काल में फर्म का संतुलन –

दीर्घकाल में समय अधिक होने के कारण फर्में मांग के अनुसार लागतो में समायोजन करने में सक्षम होती हैं। फर्मों के आवागमन प्रतिबंध रहित होने के कारण बाजार में यदि असामान्य लाभ विद्यमान हो तो बाहर की फर्में भी उत्पादन हेतु बाजार में प्रवेश करेंगी। जिसके कारण लागत में वृद्धि आएगी तथा एक स्थिति में सभी फर्मों को पुनः सामान्य लाभ ही प्राप्त होगा ।

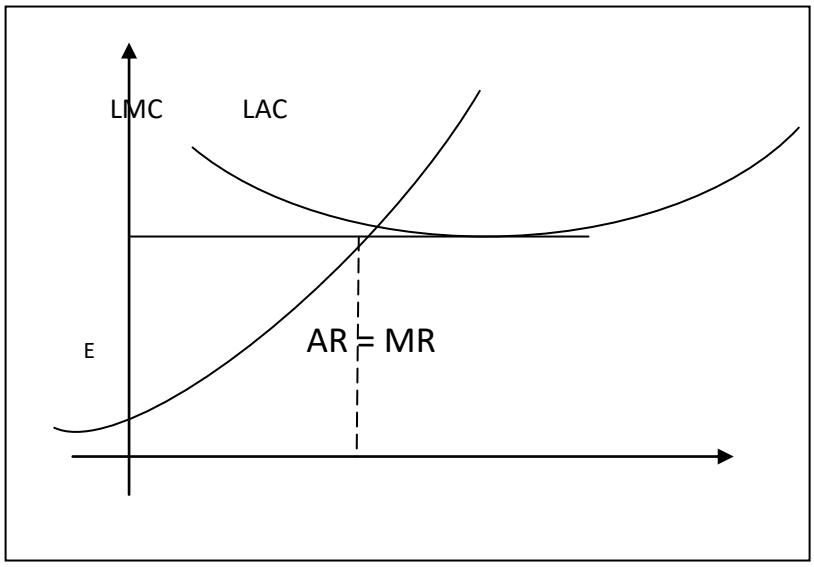

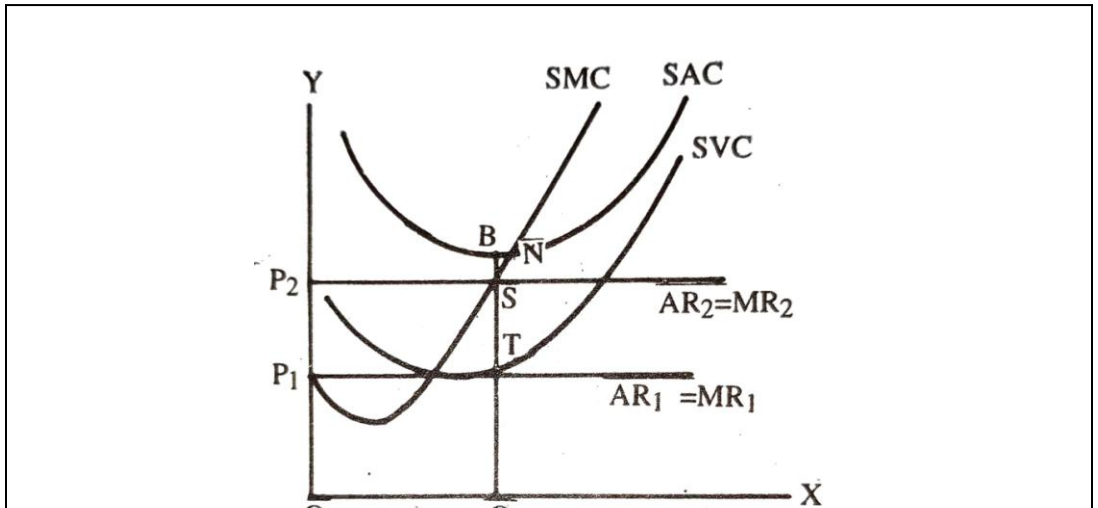

यदि बाजार में हानि की स्थिति हो तो उद्योग से फर्में बाहर जाना प्रारंभ कर देंगी, जिससे लागतो में कमी आएगी और हानि की स्थिति समाप्त होकर पुनः सामान्य लाभ स्थापित होगा। दीर्घकाल में फर्मों को सामान लाभ प्राप्त होगा तथा AR=MR=AC=MC=Price की संतुलन स्थिति होगी।

1.7 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का संतुलन –

किसी उद्योग का संतुलन तब होगा जब उस उद्योग की कुल उत्पादन मात्रा में घटने–बढ़ने की प्रवृत्ति नहीं हो। जिस मात्रा तथा कीमत पर उद्योग का मांग वक्र तथा पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटेंगे उस उत्पादन मात्रा पर उद्योग संतुलन में होगा। एक उद्योग के संतुलन हेतु निम्न शर्तें पूरी होनी चाहिए–

- उद्योग द्वारा उत्पादित पदार्थ की पूर्ति मात्रा तथा उसकी मांग मात्रा समान हो।
- मांग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित कीमत पर सभी पर में व्यक्तिगत संतुलन की स्थिति में हो।
- उद्योग की फर्म केवल सामान्य लाभ अर्जित कर रही हों।

1.7.1 अल्पकाल में उद्योग का संतुलन –

दी हुई बाजार मांग तथा बाजार पूर्ति के साथ उद्योग उस मूल्य पर संतुलन की स्थिति में होगा जिस पर बाजार मांग तथा बाजार पूर्ति परस्पर बराबर हो

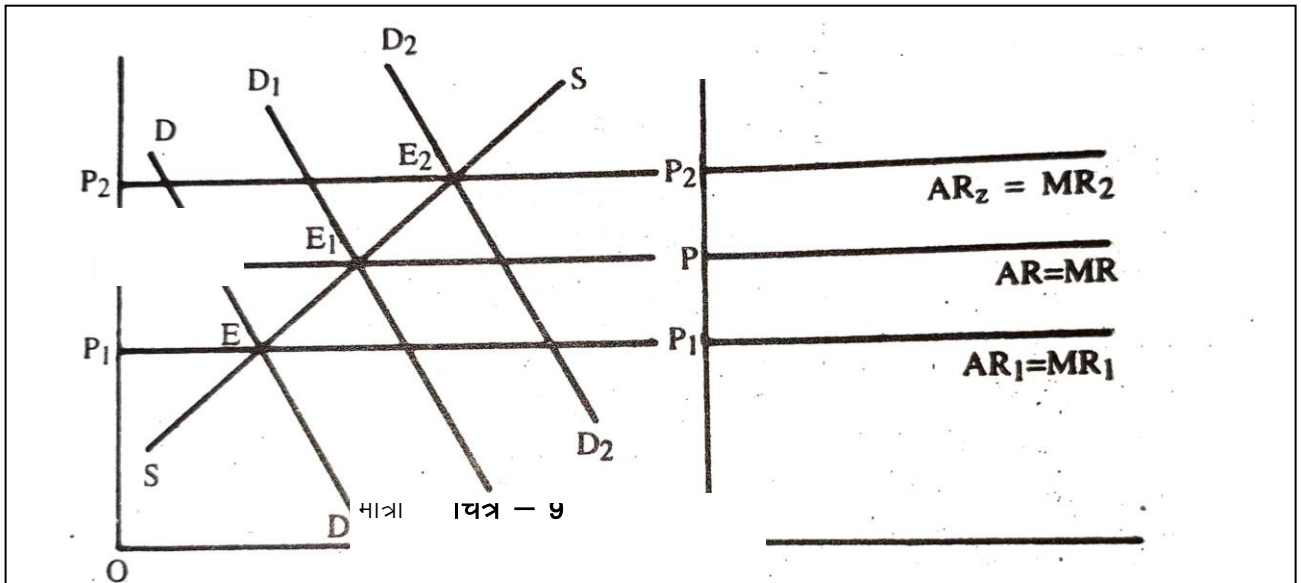

उद्योग की अल्पकालीन संतुलन में कुछ फर्म असामान्य लाभ कुछ फर्म सामान्य लाभ तथा कुछ फर्म हानि की स्थिति में होंगे। परिणाम स्वरूप उद्योग में विस्तार तथा संकुचन की संभावना बनी रहेगी।

1.7.2 दीर्घ काल में उद्योग का संतुलन –

दीर्घकाल में उद्योग संतुलन की स्थिति में होगा जब उद्योग की मांग तथा पूर्ति परस्पर बराबर हो तथा उद्योग के कुल उत्पादन में संकुचन और विस्तार की प्रवृत्ति पूर्णतः समाप्त हो जाए अर्थात सभी फर्में सामान्य लाभ ही अर्जित कर रही हो ।

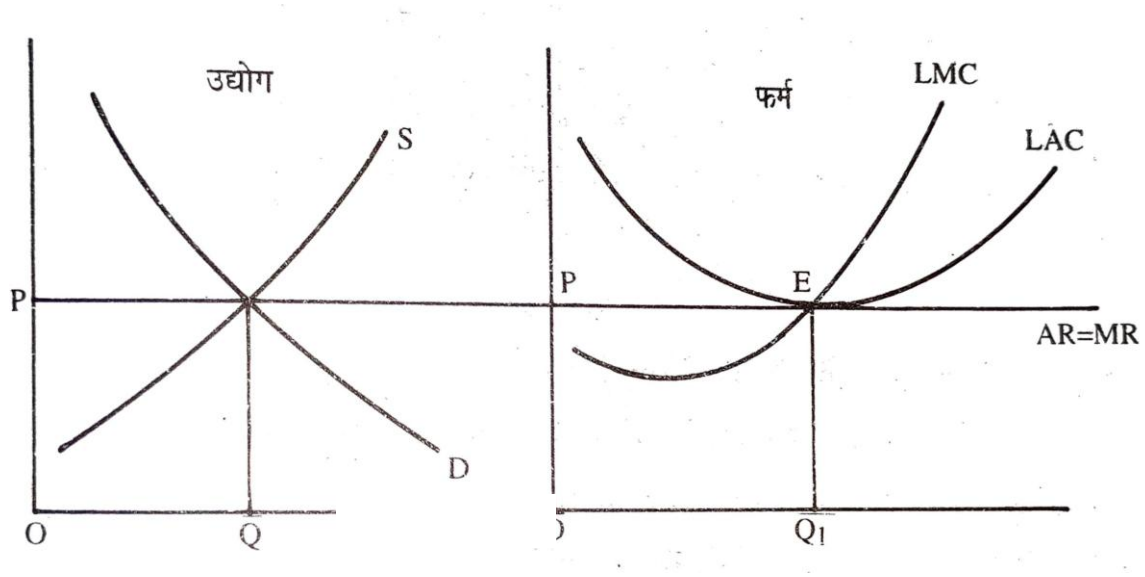

चित्र – 10

दीर्घकाल में संतुलन की स्थिति में प्रत्येक फर्म का औसत लागत औसत आगम तथा सीमांत आगम सीमांत लागत परस्पर समान होंगे अर्थात

LAC=LMC=AR=Price

1.8 बोध प्रश्न

1. पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत निर्धारण किन शक्तियों द्वारा किया जाता है?
2. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की संस्थिति कितने तरीकों से निर्धारित की जा सकती है?
3. तालाबंदी बिंदु से क्या अभिप्राय है?

1.9 सारांश

इस इकाई में हमने पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन परिस्थिति में कीमत एवं उत्पादन निर्धारण को समझा। पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत का निर्धारण किसी एक फर्म के द्वारा नहीं होता है बल्कि सहजातीय वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करने वाले उद्योग के द्वारा स्वतंत्र रूप से मूल्य का निर्धारण, बाजार की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा किया जाता है। उद्योग द्वारा कीमत का निर्धारण उद्योग के मांग वक्र तथा पूर्ति वक्र की सहायता से किया जाता है।पूर्ण प्रतियोगिता में कर्म के लिए मूल्य उद्योग द्वारा निर्धारित रहता है। अत: फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से अपनी लागत को न्यूनतम करने का प्रयास करती है तथा संतुलन को प्राप्त करती है।पूर्ण प्रतियोगी बाजार में फर्में अल्पकाल में पूर्ति के अनुसार मांग का समायोजन नहीं कर पाती हैं। उन्हें अल्पकाल में असामान्य लाभ, सामान्य लाभ तथा हानि तीनों का सामना करना पड़ता है ।

1.10 शब्दावली

पूर्ण प्रतियोगिता – बाजार का एक प्रकार जहाँ क्रेता एवम् विक्रेता अत्यधिक संख्या में पाये जाते हैं तथा कीमत पर इनका नियंत्रण नहीं होता है।

तालाबंदी बिन्दु – पूर्ण प्रतियोगिता में वह बिन्दु जहाँ फर्में उत्पादन कार्य बंद कर देती हैं।

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1. Principles of Micro Economics — Mansfield
2. A Text Book of Economic Theory — Stonier & Hague
3. Microeconomic Theory — A.P. Lerner

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 उत्तर –पूर्ण प्रतियोगी बाजार में कीमत का निर्धारण किसी एक फर्म के द्वारा नहीं होता है बल्कि सहजातीय वस्तु का उत्पादन एवं विक्रय करने वाले उद्योग के द्वारा स्वतंत्र रूप से मूल्य का निर्धारण, बाजार की मांग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा किया जाता है।

2 उत्तर –पूर्ण प्रतियोगिता में कर्म के लिए लाभ अधिकतम करने के दो प्रकार है–

- कुल आय (TR) तथा कुल लागत (TC) के आधार पर
- सीमांत आगम (MR) तथा सीमांत लागत (MC) के आधार पर

3 उत्तर – अल्पकाल में फर्म हानि की स्थिति में तभी तक उत्पादन करती हैं जब तक उसको मिलने वाली कीमत आवश्यक परिवर्तनीय लागत से अधिक हो इस स्थिति में फर्म औसत स्थिर लागत के बराबर हानि सहन करती है लेकिन जैसे ही आवश्यक परिवर्तनीय लागत कीमत के बराबर या उससे अधिक होती है फरमान में कार्य करना बंद कर देती है इसे shutdown point कहते हैं।

1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न –

1. पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत उद्योग द्वारा कीमत निर्धारित की व्याख्या करिये।

2. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के क्या उद्देश्य होते हैं? इसकी संस्थिति के आधारभूत सिद्धांतों को समझाइये।

3. पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन संस्थिति की उचित रेखाचित्रों के साथ व्याख्या करिये।

खण्ड–3

इकाई–2

विशुद्ध एकाधिकार :अल्पकालीन बाजार एवं दीर्घकालीन बाजार में फर्म का संतुलन

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 एकाधिकार

- 2.2.1 परिभाषा
- 2.2.2 विशेषताएं
- 2.2.3 संतुलन का निर्धारण

2.3 अल्पकालीन बाजार में संतुलन

- 2.3.1 असामान्य लाभ (Abnormal Profit)
- 2.3.2 सामान्य लाभ (Normal Profit)
- 2.3.3 हानि (Loss)

2.4 दीर्घकालीन बाजार में संतुलन

2.5 बोध प्रश्न

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 संदर्भ ग्रंथ

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि –

- एकाधिकार क्या होता है?
- एकाधिकार में संतुलन का निर्धारण कैसे होता है?

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में एकाधिकार में कीमत निर्धारण की संरचना तथा प्रकृति को प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययन से हम एकाधिकार की परिभाषा तथा संतुलन निर्धारण को अच्छे तरीके से समझ, जिसका अर्थशास्त्र के सिद्धांत में महत्वपूर्ण स्थान है।

2.2 एकाधिकार (Monopoly)

यह बाजार की ऐसी स्थिति होती है, जिसमें वस्तु की पूर्ति पर मात्र एक विक्रेता का नियंत्रण होता है। अर्थात् ऐसा बाजार जिसमें एक मात्र विक्रेता होता है, वही फर्म तथा उद्योग दोनों की भूमिका मे होता है। और बाजार की पूर्ति–उत्पादन एवं कीमत पर उसका पूर्ण नियंत्रण हो, ऐसे बाजार को **एकाधिकार** कहते हैं।

2.2.1 परिभाषा –

प्रो बोल्डिंग के अनुसार, शुद्ध एकाधिकारी फर्म वह फर्म है जो कि कोई ऐसी वस्तु उत्पादित कर रही है जिसका किसी अन्य फर्म की उत्पादित वस्तुओं में कोई प्रभावपूर्ण स्थानापन्न नहीं हो। **प्रो लर्नर के अनुसार**, एकाधिकार से आशय उस विक्रेता से है जिसका मांग वक्र गिरता हुआ होता है।

चैंबरलिन के मत में, एकाधिकारी उसे समझना चाहिए जो किसी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण रखता हो।

2.2.2 विशेषताएं–

शुद्ध एकाधिकार की महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्न हैं–

- बाजार में अकेला विक्रेता होता है ।
- बाजार में वस्तु की पूर्ति तथा कीमत पर विक्रेता का पूर्ण नियंत्रण होता है।
- बाजार में उत्पादित वस्तुओं की निकट स्थानापन्न वस्तु का अभाव होता है तथा तिर्यक/आड़ी माँग की लोच का मान शून्य होता है।
- उद्योग में फर्म के प्रवेश तथा बहिर्गमन पर प्रतिबंध होता है।
- दो बाजारों के बीच अत्यधिक दूरी पायी जाती है।
- एकाधिकार की स्थिति में मूल्य विभेद संभव होता है अर्थात् विक्रेता वस्तु की विभिन्न इकाईयों को अलग अलग मूल्य पर बेच सकता है।

2.2.3 संतुलन का निर्धारण –

एकाधिकार में विक्रेता अकेला होता है और वही फर्म तथा उद्योग होता है; मूल्य का निर्धारण भी वही करता है। एकाधिकारी संतुलन की स्थिति में अपने लाभ का अधिकतम करने का प्रयास करता है। संतुलन के लिये निम्नलिखित शर्तें हैं–

(i) MR= MC

(ii) MC वक्र का ढाल, MR वक्र के ढाल से अधिक हो ।

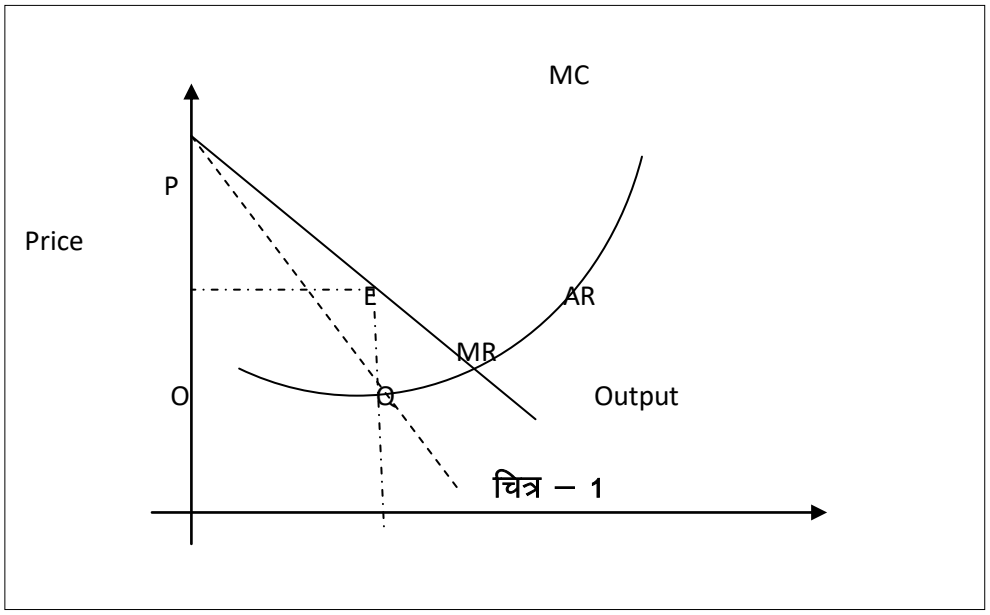

चित्र – 1

2.3 अल्पकालीन बाजार में संतुलन –

अल्पकाल में एकाधिकार की फर्म को असामान्य लाभ, सामान्य लाभ एवं हानि तीनों ही स्थितियों का सामना करना पड़ता है क्यों कि समयाभाव के कारण फर्म माँग के अनुरूप पूर्ति का समायोजन नहीं कर पाता है।

2.3.1 असामान्य लाभ (Abnormal Profit) –

असामान्य लाभ की स्थिति फर्म को तब प्राप्त होती है, जब उसको प्राप्त होने वाली कीमत या औसत आगम (AR) उसकी औसत लागत (AC) से अधिक होती है। अर्थात् AR>AC.

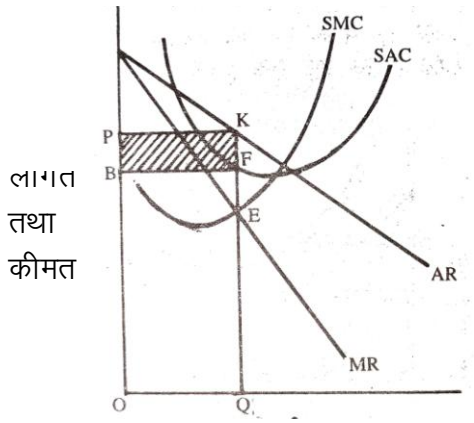

चित्र – 2

रेखाचित्र में E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति है जिससे सम्बन्धित कीमत (औसत आय) OP तथा औसत लागत OB है। चूँकि OP> OB है, अतः AR>AC, प्रति इकाई लाभ OP- OB =PB है तथा कुल लाभ PBFK है।

2.3.2 सामान्य लाभ (Normal Profit) –

फर्म सामान्य लाभ की स्थिति में तब होगी , जब उसको मिलने वाली कीमत उसकी औसत लागत के बराबर हो अर्थात् AR= AC.

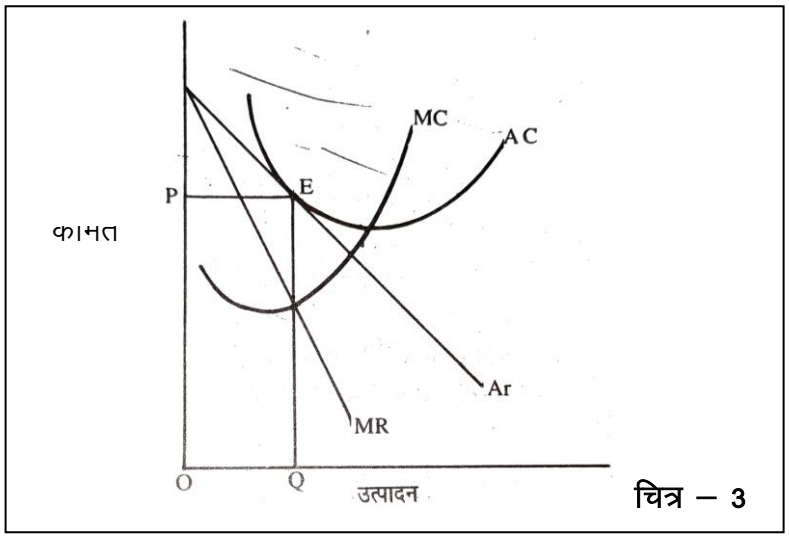

चित्र – 3

संलग्न रेखाचित्र में E बिन्दु पर संतुलन है; सम्बन्धित कीमत (औसत आगम) तथा औसत लागत बराबर है। अतः फर्म को सामान्य लाभ की प्राप्ति हो रही है।

2.3.3 हानि (Loss) -

जब फर्म को प्राप्त होने वाली औसत आय (कीमत) उसकी औसत लागत से कम होती है, तो फर्म को हानि का सामना करना पड़ता है। अर्थात् AR< AC.

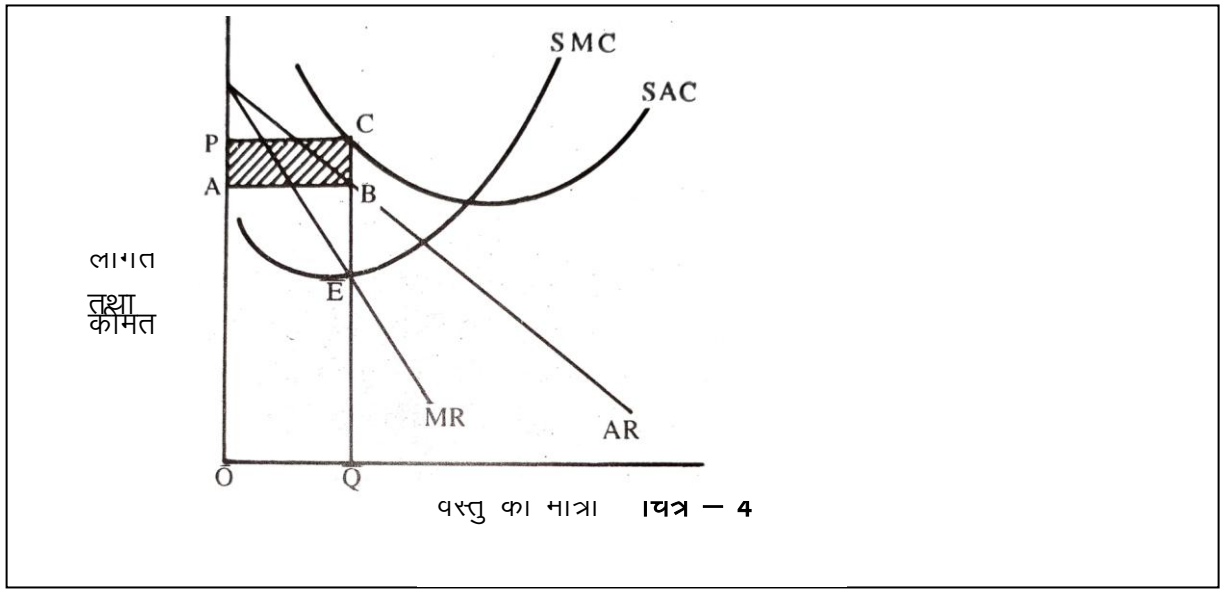

चित्र – 4

संलग्न रेखाचित्र में कीमत (OP) का मान औसत लागत (OB) से से कम है तथा फर्म को PBFK के बराबर कुल हानि हो रही है।

एकाधिकारी फर्म अल्पकाल में हानि की स्थिति में तभी तक उत्पादन करेगी जब तक कि उसको प्राप्त होने वाली कीमत का मान औसत परिवर्तनीय लागत (AVC) से अधिक रहेगा।

2.4 दीर्घकालीन बाजार में संतुलन –

दीर्घकाल में फर्म के पास समय अधिक रहता है तथा वह माँग के अनुरूप अपनी पूर्ति में समायोजन करने सक्षम होती है। दीर्घकाल में एकाधिकारी को सदैव असामान्य लाभ प्राप्त होता है क्योंकि बाजार में वह अकेला विक्रेता होता है तथा नयी फर्मों के आवगमन पर प्रतिबन्ध होता है।

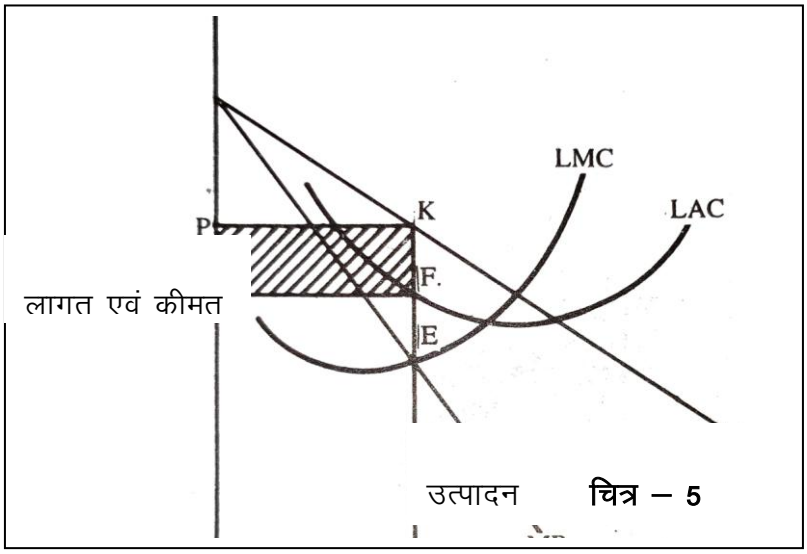

चित्र – 5

रेखाचित्र में फर्म OQ मात्रा का उत्पादन करते हुये E बिन्दु पर संतुलन की स्थिति में है; जिससे सम्बन्धित कीमत OP तथा औसत लागत OB है। चूँकि औसत आगम का मान औसत लागत से अधिक है अतः फर्म को असामान्य लाभ की प्राप्ति हो रही है। फर्म का प्रतिइकाई लाभ PB तथा कुल लाभ PBFK है।

1.5 बोध प्रश्न

1. एकाधिकार क्या होता है?
2. एकाधिकार में संतुलन निर्धारण की आवश्यक शर्त बताइये।

2.6 सारांश

एकाधिकार में विक्रेता अकेला होता है और वही फर्म तथा उद्योग होता है; मूल्य का निर्धारण भी वही करता है। एकाधिकारी संतुलन की स्थिति में अपने लाभ का अधिकतम करने का प्रयास करता है। अल्पकाल में एकाधिकार की फर्म को असामान्य लाभ, सामान्य लाभ एवं हानि तीनों ही स्थितियों का सामना करना पड़ता है क्यों कि समयाभाव के कारण फर्म माँग के अनुरूप पूर्ति का समायोजन नहीं कर पाता है। दीर्घकाल में एकाधिकारी को सदैव असामान्य लाभ प्राप्त होता है क्योंकि बाजार में वह अकेला विक्रेता होता है तथा नयी फर्मों के आवगमन पर प्रतिबन्ध होता है।

2.7 शब्दावली

एकाधिकार –यह बाजार की ऐसी स्थिति होती है, जिसमें वस्तु की पूर्ति पर मात्र एक विक्रेता का नियंत्रण होता है।

2.8 संदर्भ ग्रंथ

1. व्यष्टि अर्थशास्त्र	एस. एन. लाल
2. Modern Micro Economics	A. Koustsoyiannis
3. Principles of Micro Economics	Mansfield

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.उत्तर– एकाधिकार में विक्रेता अकेला होता है और वही फर्म तथा उद्योग होता है; मूल्य का निर्धारण भी वही करता है।

2.उत्तर– संतुलन के लिये निम्नलिखित शर्तें हैं–

(i) MR= MC

(ii) MC वक्र का ढाल, MR वक्र के ढाल से अधिक हो ।

2.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एकाधिकार को परिभाषित करते हुए अल्पकालीन एवम् दीर्घकालीन बाजार में संतुलन की व्याख्या करिये।

खण्ड 3

इकाई–3

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिताःअल्पकालीन बाजार एवं दीर्घकालीन बाजार में फर्म का संतुलन अल्पाधिकार

इकाई की रुपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में संतुलन का निर्धारण

3.3 अल्पकालीन बाजार में संस्थिति

- 3.3.1 असामान्य लाभ (Abnormal Profit)
- 3.3.2 सामान्य लाभ (Normal Profit)
- 3.3.3 हानि (Loss)

3.4 दीर्घकालीन बाजार में फर्म का संतुलन

3.5 अल्पाधिकार (Oligopoly)

- 3.5.1 अल्पाधिकार की विशेषताएँ

3.6 अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण

- 3.6.1 स्वतंत्र मूल्य निर्धारण
- 3.6.2 सन्धिपूर्ण मूल्य निर्धारण
- 3.6.3 कीमत नेतृत्व के अंतर्गत मूल्य निर्धारण–

3.7 बोध प्रश्न

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 संदर्भ ग्रंथ

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि –

- एकाधिकारिक या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में संतुलन का निर्धारण कैसे होता है?
- अल्पाधिकार की विशेषताएं क्या हैं? और अल्पाधिकार में कीमत का निर्धारण किस प्रकार होता है?

3.1 प्रस्तावना

एकाधिकारिक या एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म संतुलन की स्थिति की प्राप्ति हेतु अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है। इस इकाई में एकाधिकारिक प्रतियोगिता में अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन बाजार में फर्म के संतुलन की व्याख्या उचित रेखाचित्रों की सहायता से की गयी है। अंत में विधार्थी अल्पाधिकार की परिभाषा, विशेषता और कीमत निर्धारण की प्रक्रिया भी जान सकेंगे, जिसका अर्थशास्त्र के सिद्धांत में महत्वपूर्ण स्थान है।

3.2 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में संतुलन का निर्धारण

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म संतुलन की स्थिति में अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है। प्रो. चैम्बरलिन ने अपने सिद्धान्त में बताया कि मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में फर्मे प्रत्यक्ष रूप से MR= MC की अवधारणा का प्रयोग नहीं करती हैं, परन्तु उनके सिद्धान्त में अप्रत्यक्ष रूप से MR= MC की अवधारणा निहित हैं। एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म द्वारा अधिकतम लाभ वाले उत्पादन का निर्धारण तीन बातों पर निर्भर करता है–

i. फर्मों द्वारा ली जाने वाली कीमत।
ii. वस्तु की किस्म ।
iii. विक्रय लागत की मात्रा।

3.3 अल्पकालीन बाजार में संस्थिति

अल्पकाल में फर्म को तीन स्थितियों का सामना करना पड़ता है –

3.3.1 असामान्य लाभ (Abnormal Profit)

असामान्य लाभ की स्थिति में फर्म को प्राप्त कीमत (औसत आगम) उसकी औसत लागत (AC) से अधिक होती है–

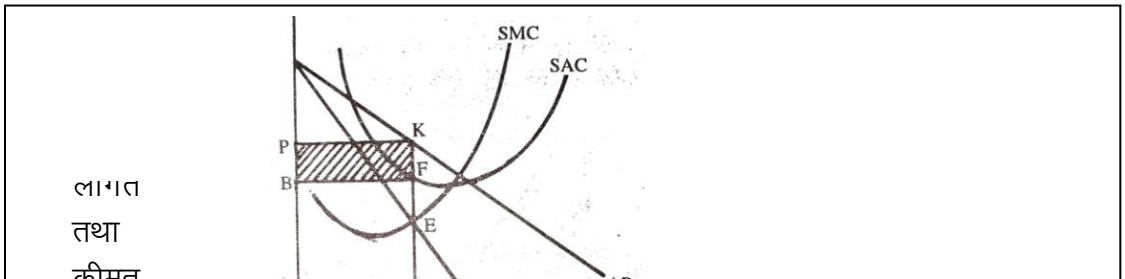

रेखाचित्र में चुँकि OP> OB है, अतः AR>AC होगा । इस स्थिति में प्रति इकाई लाभ PB तथा कुल लाभ PBFK होगा।

3.3.2 सामान्य लाभ (Normal Profit)

सामान्य लाभ की स्थिति में एकाधिकारात्मक प्रतियोगीता में फर्मों को उनकी औसत लागत (AC) के बराबर कीमत (औसत आय) प्राप्त होती है अर्थात् AR = AC.

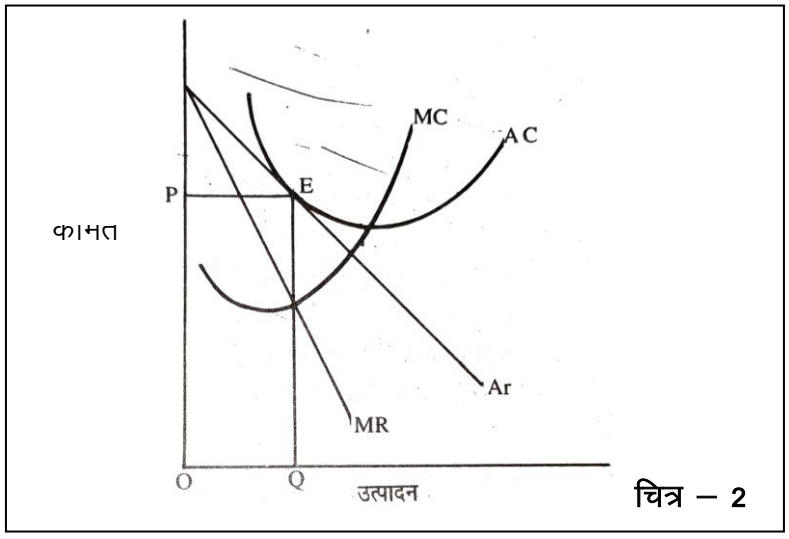

चित्र – 2

3.3.3 हानि (Loss)

हानि की स्थिति में फर्मों को प्राप्त कीमत या औसत आय (AR) उनकी वहन की गयी औसत लागत (AC) क्रम होती है। अर्थात् AR< AC.

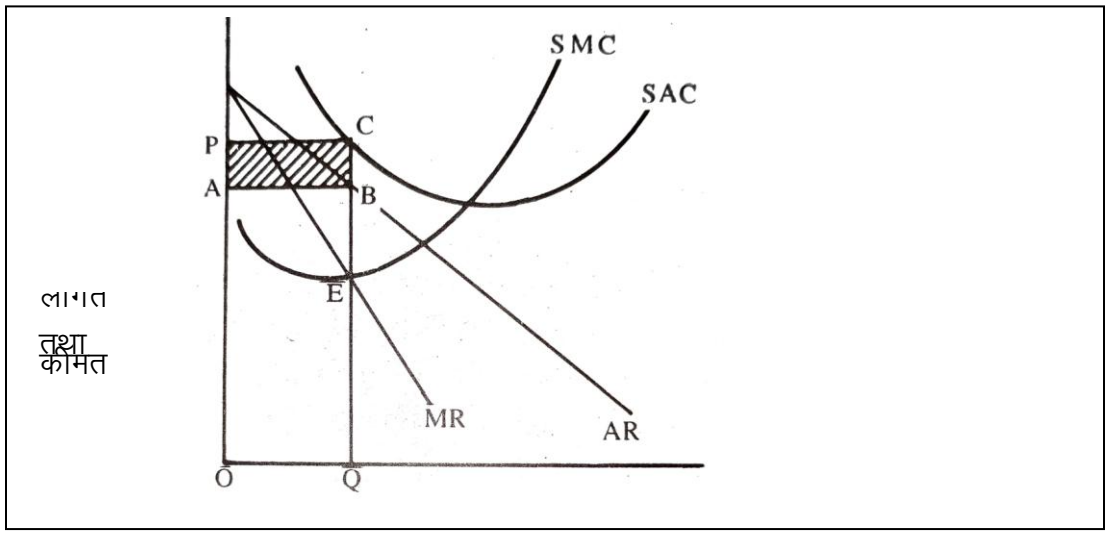

वस्तु की मात्रा **चित्र – 3**

रेखाचित्र में संतुलन बिन्दु E से सम्बन्धित कीमत OA तथा औसत लागत OP है। चूँकि OA<OP अतः फर्म की प्रति इकाई हानि AP तथा कुल हानि PABC है।

3.4 दीर्घकालीन बाजार में फर्म का संतुलन

दीर्घकाल में समय अधिक होने तथा फर्मों का आवागमन (उद्योग में) सरल होने के कारण एकाधिकारात्मक बाजार में फर्मों को सदैव सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है; क्योंकि यदि बाजार में असामान्य लाभ की स्थिति हो तो नयी फर्में उस बाजार /उद्योग में प्रवेश करेंगी, जिससे पूर्ति एवं लागतों में वृद्धि होगी और यह तब जारी रहेगी, जब तक औसत लागत और औसत आय परस्पर बराबर न हों जायें। अर्थात् AR = AC हो जाये ।

यदि बाजार में हानि की स्थिति हो तो दीर्घकाल में इस बाजार से फर्में बाहर जाना प्रारम्भ कर देंगी, जिससे पूर्ति और लागत जन्य कीमतें कम होंगी। यह क्रिया तब तक होगी जब तक कि सामान्य लाभ या AR = AC की स्थिति न प्राप्त हो जाये ।

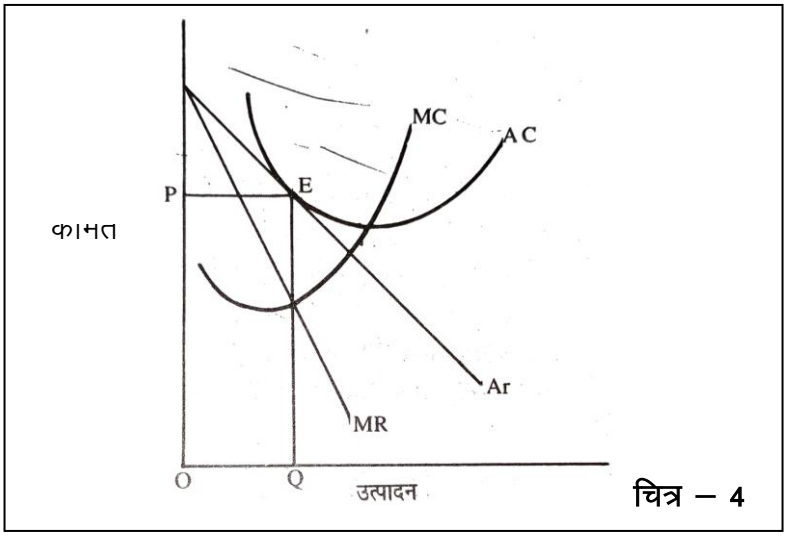

चित्र – 4

इस प्रकार दीर्घकाल में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्मों को सदैव सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है। सन्तुलन की स्थिति में फर्मों के औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर कार्य न करने के कारण अतिरिक्त उत्पादन क्षमता फर्मों में विद्यमान रहती है।

इस प्रकार संतुलन स्थिति में – MR= MC

AR= AC परन्तु AR > MC.

AR> MC अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता को दर्शाता है।

3.5 अल्पाधिकार (Oligopoly)-

अल्पाधिकार अपूर्ण प्रतियोगिता का एक महत्वपूर्ण रूप है। अल्पाधिकार(Oligopoly) उस स्थिति को कहा जाता है, जिसमें एक वस्तु का उत्पादन/विक्रय करने वाली फर्में बहुत कम संख्या; सामान्यतः 2 से 10 के बीच होती हैं। अल्पाधिकार का सबसे सरल रूप ' **द्वि– अधिकार'** (Duopoly) होता है, जिसमें सिर्फ 2 फर्में होती हैं। अल्पाधिकार को 'कुछ में प्रतियोगिता' भी कहते हैं।

जब अल्पाधिकार में फर्मों के पदाथ समान हों तो उसे **'गैर– विभेदीकृत अल्पाधिकार'** कहते हैं या शुद्ध अल्पाधिकार कहा जाता है। लेकिन जब विभिन्न विक्रेताओं के पदार्थ एक दूसरे के निकट स्थानापन्न होते हैं, तो इसे **विभेदीकृत अल्पाधिकार** कहते हैं।

3.5.1 अल्पाधिकार की विशेषताएँ

(1) फर्मों के बीच परस्पर निर्भरता पायी जाती है। एक फर्म के निर्णय का अन्य फर्मों की कीमत ,उत्पादन , विक्रय लागतों पर प्रभाव पड़ता है।

(2) अल्पाधिकार में विज्ञापन तथा विक्रय लागतें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

(3) उद्योग की फर्मों में समूह व्यवहार (कार्टेल) पाया जाता है।

(4) अल्पाधिकारी का माँग वक्र– अल्पाधिकार में फर्मों का माँग वक्र अनिश्चित होता है । क्योंकि फर्मों के बीच परस्पर निर्भरता पायी जाती हैं।

3.6 अल्पाधिकार में कीमत निर्धारण

अल्पाधिकार में कीमत का निर्धारण फर्में स्वतंत्र रूप से संधिपूर्ण तरीके से अथवा कीमत नेतृत्व द्वारा करती हैं।

3.6.1 स्वतंत्र मूल्य निर्धारण–

स्वतंत्र मूल्य निर्धारण के अंतर्गत अल्पाधिकार उद्योग की प्रत्येक फर्म अपने मूल्य तथा उत्पादन मात्रा सम्बंधित निर्णय स्वतंत्र रूप से संपादित करती है। इस स्थिति में प्रतिद्वंदी विक्रेताओं में निरंतर कीमत युद्ध होने के कारण कीमत में पहले से अधिक स्थिरता आ सकती है।

3.6.2 सन्धिपूर्ण मूल्य निर्धारण –

स्वतंत्र मूल्य निर्धारण नीति द्वारा उत्पन्न अस्थिरता से बचने के लिए अल्पाधिकारीं फर्में संधिपूर्ण अल्पाधिकार द्वारा कीमत तय करती हैं। इसकी व्याख्या अगली इकाई में प्रस्तुत है।

3.6.3 कीमत नेतृत्व के अंतर्गत मूल्य निर्धारण–

कीमत नेतृत्व के अंतर्गत फर्में उस कीमत पर अपनी वस्तुओं को बेचने के लिए तैयार होती हैं, जो उद्योग के किसी एक सदस्य फर्म द्वारा निर्धारित की जाती है।

कीमत नेतृत्व के अंतर्गत एक फर्म जो साधारणतः कोई बड़ी फर्म होती है, जो मूल्य निर्धारण करती है और अल्पाधिकार उद्योग की अन्य फर्में उस कीमत का अनुसरण करती हैं। यह सब एक अनौपचारिक समझौते की तरह होता है।

3.7 बोध प्रश्न

1. एकाधिकारिक प्रतियोगिता से आप क्या समझते हैं?
2. अल्पाधिकार में कीमत नेतृत्व क्या है?

3.8 सारांश

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म संतुलन की स्थिति में अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है। प्रो. चैम्बरलिन ने अपने सिद्धान्त में बताया कि मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में फर्मे प्रत्यक्ष रूप से MR= MC की अवधारणा का प्रयोग नहीं करती हैं, परन्तु उनके सिद्धान्त में अप्रत्यक्ष रूप से MR= MC की अवधारणा निहित हैं।

3.9 शब्दावली

एकाधिकारिक प्रतियोगिता– एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म संतुलन की स्थिति में अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है।

3.10 संदर्भ ग्रंथ

1. A Text Book of Economic Theory	Stonier & Hague
2. Microeconomic Theory	A.P. Lerner
3. A Revision of Demand Theory	J.R. Hicks

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.उत्तर– एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्म संतुलन की स्थिति में अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है। प्रो. चैम्बरलिन ने अपने सिद्धान्त में बताया कि मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में फर्मे प्रत्यक्ष रूप से MR= MC की अवधारणा का प्रयोग नहीं करती हैं, परन्तु उनके सिद्धान्त में अप्रत्यक्ष रूप से MR= MC की अवधारणा निहित हैं। एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म द्वारा अधिकतम लाभ वाले उत्पादन का निर्धारण तीन बातों पर निर्भर करता है–

i. फर्मों द्वारा ली जाने वाली कीमत।

ii. वस्तु की किस्म ।

iii. विक्रय लागत की मात्रा।

2.उत्तर– कीमत नेतृत्व के अंतर्गत फर्में उस कीमत पर अपनी वस्तुओं को बेचने के लिए तैयार होती हैं, जो उद्योग के किसी एक सदस्य फर्म द्वारा निर्धारित की जाती है।

3.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म के संतुलन की अल्पकालीन बाजार के संदर्भ में व्याख्या कीजिये।

2. एकाधिकारिक प्रतियोगिता में फर्म के संतुलन की दीर्घकालीन बाजार के संदर्भ में व्याख्या कीजिये।

3. अल्पाधिकार क्या होता है? इसके अंतर्गत कीमत निर्धारण के विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या करिये।

खण्ड–4 इकाई–1

वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 वितरण

1.3 सीमान्त उत्पादकता का आशय तथा उसकी माप

1.4 सीमान्त भौतिक उत्पादन

1.5 सीमान्त मूल्य उत्पादन

1.6 सीमान्त आय उत्पादन

1.7 वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

1.8 बोध प्रश्न

1.9 सारांश

1.10 शब्दावली

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि –

- वितरण की परिभाषा क्या है?
- वितरण की सीमांत उत्पादकता का आशय क्या है?
- वितरण का सीमांत उत्पादकता सिद्धांत क्या है?

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में वितरण का अर्थ समझाने के साथ साथ सीमांत उत्पादकता और उसकी माप को भी विस्तापूर्वक समझाया गया है। वितरण के सीमांत उत्पादकता सिद्धांत को उसकी मान्यताओं के आधार पर उचित रेखाचित्र के साथ प्रस्तुत किया गया है। तथा अंत में छात्रों की जानकारी के लिए वितरण के सीमांत उत्पादकता सिद्धांत की अनेक अर्थशास्त्रियों द्वारा की गयी आलोचना को भी समझाया गया है।

1.2 वितरण

एक निश्चित उत्पादन को साधनों के बीच विभाजित करने की प्रक्रिया ही **वितरण** कहलाती है। इसे साधनों के मूल्य निर्धारण का सिद्धान्त भी कहते हैं। जिस प्रकार किसी वस्तु का मूल्य उसकी माँग एवं पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है; उसी प्रकार उत्पादन के साधनों का मूल्य – निर्धारण उनकी माँग एवं पूर्ति के द्वारा होता है।

वितरण के दो रूप होते हैं– व्यक्तिगत तथा कार्यात्मक । इस खण्ड में वितरण के कार्यात्मक स्वरूप की चर्चा की जानी है। कार्यात्मक वितरण में उत्पादन क्रिया में लगे साधनों के पारिश्रमिक या मूल्य की दर निर्धारित करते हैं ; जिसके अन्तर्गत हम यह अध्ययन करते हैं कि उत्पादन – क्रिया में संलग्न साधनों द्वारा की गयी सेवाओं या कार्यों के प्रतिफल में क्या पारिश्रेषिक दिया जाना चाहिए।

1.3 सीमान्त उत्पादकता का आशय तथा उसकी माप

सीमान्त उत्पादकता से आशय किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के रोजगार या उत्पादन – प्रक्रिया में प्रवेश के कारण कुल उत्पादन में वृद्धि से है। सीमान्त उत्पादकता का विभाजन निम्नलिखित आधारों पर होता है–

1.4 सीमान्त भौतिक उत्पादन (Marginal physical product –MMP)

अन्य साधनों की स्थिर मात्रा के साथ ; किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के रोजगार में आने के कारण कुल उत्पादन में दृष्टिगोचर वृद्धि/परिवर्तन ही उस साधन का सीमान्त भौतिक उत्पादन है।

सीमान्त भौतिक उत्पादन = साधन की एक अतिरिक्त – साधन की उस अतिरिक्त इकाई के बाद कुल उत्पादन इकाई के पहले कुल उत्पादन

$$MPP=Tp_n-Tp_n-1$$

1.5 सीमान्त मूल्य उत्पादन (Marginal value product – MVP)

जब सीमान्त भौतिक उत्पादन को वस्तु के मूल्य या औसत आय से गुणा कर दिया जाये तो प्राप्त गुणनफल ही सीमान्त मूल्य उत्पादन के तुल्य होगा।

सीमान्त मूल्य उत्पादन = सीमान्त भौतिक उत्पाद x मूल्य

$$\mathbf{MVP = Mpp \times Price\ (AR)}$$

1.6 सीमान्त आय उत्पादन (Marginal Revenue Product – MRP)

सीमान्त भौतिक उत्पादन में सीमान्त आय से गुणा करने पर प्राप्त गुणनफल ही सीमान्त आय उत्पादन (MRP) कहलाता है।

$$MRP = MPP \times MR$$

इस प्रकार सीमान्त आय उत्पाद (MRP); साधन की एक अतिरिक्त इकाई के प्रयोग में आने के कारण कुल आय में परिवर्तन की दर को प्रदर्शित करता है।

- पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में $AR = MR = P$ होता है, इसलिये पूर्ण प्रतियोगिता में MVP = MRP होता है।
- एकाधिकार मे AR > MR होता है, अतः एकाधिकार में MVP > MRP होता है।

1.7 वितरण का सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को साधनों के मूल्य निर्धारण का सिद्धान्त भी माना जाता है। इसका प्रतिपादन सर्वप्रथम **वॉन थनेन** ने 1826 में किया । इसकी क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित व्याखा 1902 में जे0 बी0 क्लार्क ने की। जे.बी. क्लार्क के अनुसार सभी साधनों को प्राप्त होने वाला पारितोषिक उनकी सीमान्त आय उत्पादकता के आधार पर निर्धारित होना चाहिये । जिस प्रकार किसी वस्तु का मूल्य उसमें नीहित सीमान्त उपयोगिता के आधार पर तय होता है , उसी प्रकार प्रत्येक साधन का मूल्य/पारितोषिक उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर होना चाहिये।

मान्यतायें– वितरण के सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएँ निम्नलिखित हैं–

i. उत्पादन के साधन पूर्णतया गतिशील हैं।

ii. साधन बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है।

iii दीर्घ कालीन समयावधि।

iv.समता प्रतिफल का नियम क्रियाशील होता है।

v.साधनों में प्रतिस्थापन सम्भव है।

उपर्युक्त मान्यताओं के आधार पर साधन का मूल्य (W) उसकी सीमान्त आय उत्पादकता के बराबर होगा तथा एक उत्पादक वहीं पर अधिकतम लाभ प्राप्त करते हुए संतुलन की स्थिति में होगा।

$$MRP = Wage(W)$$

यदि $W > MRP$ हो तो उत्पादक को हानि होगी तथा उत्पादक श्रम की इकाईयों में कमी करेगा, जिससे MRP में वृद्धि होगी और उत्पादक $W = MRP$ होने तक यह क्रिया जारी रखेगा।

यदि $W < MRP$ हो तो उत्पादक को लाभ प्राप्त होगा तथा वह साधनों की और अधिक रोजगार प्रदान करेगा, जिससे साधनों के सीमान्त आय उत्पादन (MRP)में कमी होगी जो मजदूरी (W) के बराबर होने तक जारी रहेगी।

उपरोक्त स्थितियों के आधार पर संतुलित मजदूरी का निर्धारण वहाँ पर होगा , जहाँ पर –

i.श्रम की माँग ,श्रम की पूर्ति के बराबर हो। ($D_L = S_L$)

ii. प्रत्येक रोजगार में एक साधन की सीमान्त उत्पादकता समान हो।

iii. एक रोजगार में प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पादकता उसी रोजगार में लगे अन्य साधनों की सीमान्त उत्पादकता के बराबर हो।

iv सीमान्त मजदूरी , सीमान्त आय उत्पादकता के बराबर हो ।

MW = MRP

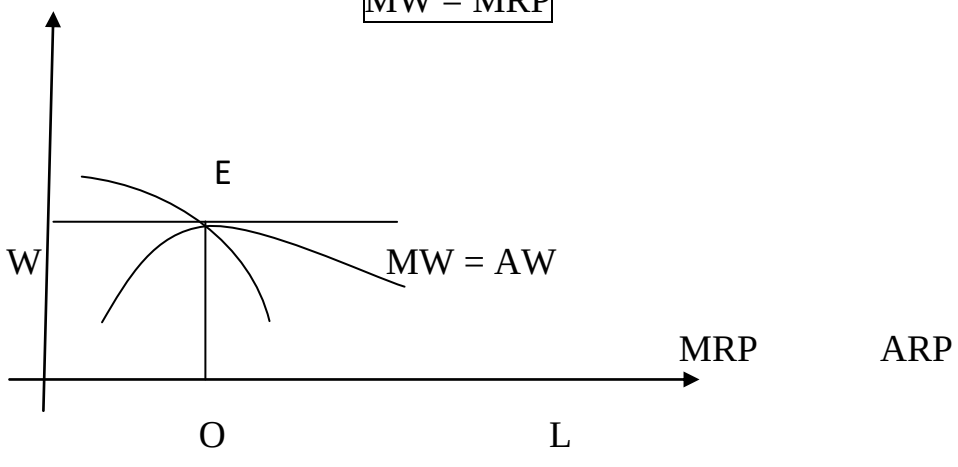

उपरोक्त रेखाचित्र में Y अक्ष पर मजदूरी तथा X अक्ष पर श्रम की मात्रा है। दोनों वक्रों के माध्यम से औसत आय – उत्पादन (ARP) तथा सीमान्त आय उत्पादन (MRP) प्रदर्शित किया गया है। बायें से E बिन्दु तक औसत आय उत्पादन बढ़ता है, जो उत्पादन –वृद्धि– नियम का परिचायक है तथा E बिन्दु से दाहिनी ओर यह नीचे की ओर गिरता है , जो उत्पादन ह्रास नियम का प्रतिक है, E बिन्दु पर उत्पादन समता नियम लागू है। E बिन्दु पर सन्तुलन की स्थिति है। यहीं उत्पादक संतुलन की स्थिति में होगा और श्रमिक OL मात्रा लगायेगा तथा OW मजदूरी देगा। इस बिन्दु पर मजदूरी, सीमान्त आय उत्पादन तथा औसत आय उत्पादन के बराबर होगी।

$$AW = MW = MRP = ARP$$

- आलोचनायें :– अनेक अर्थशास्त्रियो ने सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की आलोचना की है, जिसके प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं

1. यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता पर आधारित है, जो कि अव्यावहारिक है।
2. यह सिद्धान्त दीर्घकाल में लागू होता है, अल्पकाल में क्रियाशील नहीं होता है।
3. इस सिद्धान्त के अनुसार साहसी का पारितोषिक नहीं निर्धारित किया जा सकता क्योंकि उसकी सीमान्त उत्पादकता नहीं ज्ञात की जा सकती।
4. यह सिद्धान्त आंशिक रूप से सत्य है तथा केवल माँग पक्ष (श्रम की माँग) पर आधारित होने के कारण एक– पक्षीय है। मॉरिस डॉब के अनुसार , **'' इस सिद्धान्त की अपूर्णता का एक कारण यह है कि इसमें कहीं पर यह उल्लेख नहीं है कि श्रम की पूर्ति किस प्रकार निर्धारित होती है।''**
5. यदि श्रमिकों को पारिश्रमिक सीमान्त उत्पादकता के बराबर दिया जाय तो इससे श्रमिकों का शोषण होगा।
6. कुछ आलोचकों के अनुसार सीमान्त उत्पादकता का सही अनुमान लगाना कठिन होता है।

उपरोक्त आलोचनाओं के बाद भी वितरण में सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त की महत्वपूर्ण भूमिका है। विवरण के इस सिद्धान्त ने आधुनिक सिद्धान्त का आधार तैयार किया। प्रो0 बेन्हम का कथन है, '' जहाँ तक प्रथम अनुमान का प्रश्न है, यह अत्यन्त ही उपयोगी है, और वितरण का कोई अन्य सामान्य सिद्धान्त नहीं है, जो इससे अधिक उपयोगी हो। ''

1.8 बोध प्रश्न

1.वितरण क्या है?

2. सीमांत भौतिक उत्पादन क्या है?

3. वितरण का सीमांत उत्पादकता सिद्धांत कब और किसने दिया?

1.9 सारांश

उत्पादन को साधनों के बीच विभाजित करने की प्रक्रिया ही **वितरण** कहलाती है। इसे साधनों के मूल्य निर्धारण का सिद्धान्त भी कहते हैं। जिस प्रकार किसी वस्तु का मूल्य उसकी माँग एवं पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है; उसी प्रकार उत्पादन के साधनों का मूल्य – निर्धारण उनकी माँग एवं पूर्ति के द्वारा होता है। वितरण के दो रूप होते हैं– व्यक्तिगत तथा कार्यात्मक ।

1.10 शब्दावली

प्रतिफल – किसी सेवा के बदले मिलने वाला पारितोषिक

1.11 संदर्भ ग्रंथ

1. Ecomomics Theory and Operatiions Analysis W.J.Baumol
2. Pricing, Distribution and Employment J.S.Bain

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.उत्तर – उत्पादन को साधनों के बीच विभाजित करने की प्रक्रिया ही वितरण कहलाती है।

2.उत्तर – किसी साधन की एक अतिरिक्त इकाई के रोजगार में आने के कारण कुल उत्पादन में दृष्टिगोचर वृद्धि/परिवर्तन ही उस साधन का सीमान्त भौतिक उत्पादन है।

3.उत्तर – इस सिद्धान्त को साधनों के मूल्य निर्धारण का सिद्धान्त भी माना जाता है। इसका प्रतिपादन सर्वप्रथम **वॉन थनेन** ने 1826 में किया । इसकी क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित व्याखा 1902 में जे0 बी0 क्लार्क ने की।

1.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. वितरण की सीमांत उत्पादकता का आशय तथा उसकी माप को समझाइये।

2. वितरण के सीमांत उत्पादकता सिद्धांत की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिये।

खण्ड 4 इकाई 2

लगान के सिद्धान्त : रिकार्डो का सिद्धान्त, आधुनिक सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 लगान

2.3 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त

2.4 रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनायें

2.5 लगान का आधुनिक सिद्धान्त

2.6 बोध प्रश्न

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 संदर्भ ग्रंथ

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि–

- लगान क्या है?
- रिकार्डो का लगान सिद्धांत।
- लगान का आधुनिक सिद्धांत क्या है।

2.1 प्रस्तावना

लगान शब्द का अर्थ भूमि के उपयोग हेतु प्रदान किये गए प्रतिफल से है। इस इकाई में लगान की परिभाषा प्रस्तुत करने के साथ साथ रिकार्डो ले लगान सिद्धांत की व्याख्या की गयी है, जिसमें रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित दुर्लभता तथा भेदात्मक लगान को समझाया गया है। इकाई के अंत में लगान के आधुनिक सिद्धांत की विस्तारपूर्वक व्याख्या की गयी है, जो विद्यार्थियों के ज्ञानार्जन हेतु लाभकारी है।

2.2 लगान (Rent)-

लगान का शब्द का अभिप्राय प्रयोग भूमि के उपयोग के लिए दिये गये प्रतिकल से हैं। मार्शल के अनुसार, **'' लगान वह आय हैं , जो भूमि के रूप में प्रकृति द्वारा प्रदत्त निःशुल्क उपहार के रूप में भू–स्वामी को प्राप्त होता हैं।''** इस प्रकार मार्शल प्रदत्त परिभाषा के अनुसार क्लासिकल दृष्टिकोण दृष्टिगोचर होता हैं। जबकि आधुनिक अर्थशात्रियों ने विशिष्टता के आधार पर भूमि की परिभाषा दी। आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार लगान वह अतिरेक है, जो किसी साधन को वर्तमान व्यवसाय में बनाये रखने हेतु आवश्यक है।

2.3 रिकार्डो का लगान सिद्धान्त

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का लगान सिद्धान्त रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के नाम से जाना जाता हैं। यद्यपि रिकार्डो से पहले विलियम पेटी ने 'अधिशेष' या बचा हुआ (Remainder) के रूप में लगान की व्याख्या की है।

रिकार्डो के अनुसार –'' **लगान भुमि की उपज का वह भाग है, जो भूमि के मालिक को , भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शाक्तियों के प्रयोग के लिए दिया जाता है। ''**

रिकार्डो लगान का कारण भूमि में उपलब्ध मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों को मानते हैं , जिनके कारण भूमि पर निरंतर उत्पादन होता रहता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रिकार्डो की लगान सम्बधी धारणा , प्रसम्बिदा लगान की धारणा से भिन्न विनयोजित पूँजी का प्रतिफल भी शामिल है। इस प्रकार रिकार्डो के अनुसार ,–

आर्थिक लगान = प्रसम्बिदा लगान -भूमि की मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों के अतिरिक्त प्रतिफल

रिकार्डो का लगान सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं को पूर्ण करता है–

(1) अर्थव्यवस्था में भूमि की पूर्ति पूर्णतया स्थिर हैं एवं बेलोच हैं। अर्थात् भूमि की पूर्ति में , लगान के परिवर्तन का प्रभाव शून्य होता है।

(2) भूमि के टुकडों को उत्पादकता के आधार पर या भौगोलिक स्थिति के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में बॉटा जा सकता हैं।

(3) भूमि का एक मात्र प्रयोग (कृषि) ही सम्भव है।
(4) भूमि – बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है।

(5) उत्पादन में ह्रासमान प्रतिफल का नियम कार्यशील है।

उपर्युक्त मान्यताओं को ध्यान में रखते हुये रिकार्डो ने दो प्रकार के लगान की चर्चा की है–

(1) दुर्लभता का लगान :–

रिकार्डो ने स्पष्ट किया है कि , भूमि के विभिन्न टुकडों में समरूपता होने पर भी लगान उत्पन्न होगा , यदि भूमि की पूर्ति सीमित/ दुर्लभ हो । इसे रिकार्डो ने शुद्ध दुर्लभता का लगान कहा। दुर्लभता का लगान औसत उत्पादन लागत (जिसमें लगान नहीं सम्मिलित हैं) के उपर औसत आय का वह आधिक्य है जो भूमि के गुण में एक रूपकता होने के बावजूद भी भूमिपति की भूमि की पुर्ति की सीमितता के कारण प्राप्त होता है।

रिकार्डो इसकी व्याख्या करने हेतु एक उदाहरण स्वरूप ऐसे टापू को लेते हैं , जिसमें भूमि के सभी टुकडों की ऊर्वरा – शक्ति समान है , तथा उनका मात्रा कृषि में उपयोग सम्भव है। यदि कुछ लोग यहाँ श्रम एवं पूँजी की मात्रा से अन्न उत्पादित करते हैं। भूमि का पूर्ण उपयोग होने से पहले बाजार में अन्न का मूल्य न्यूनतम इतना होगा कि श्रम तथा पूँजी के रूप में लगी औसत लागत के बराबर उत्पादकों को आय मिल जाये। इस प्रकार उत्पादक पूँजी एवं श्रम के रूप में व्यक्त औसत उत्पादन लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर उत्पादन करेगें क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता प्रभावी है।

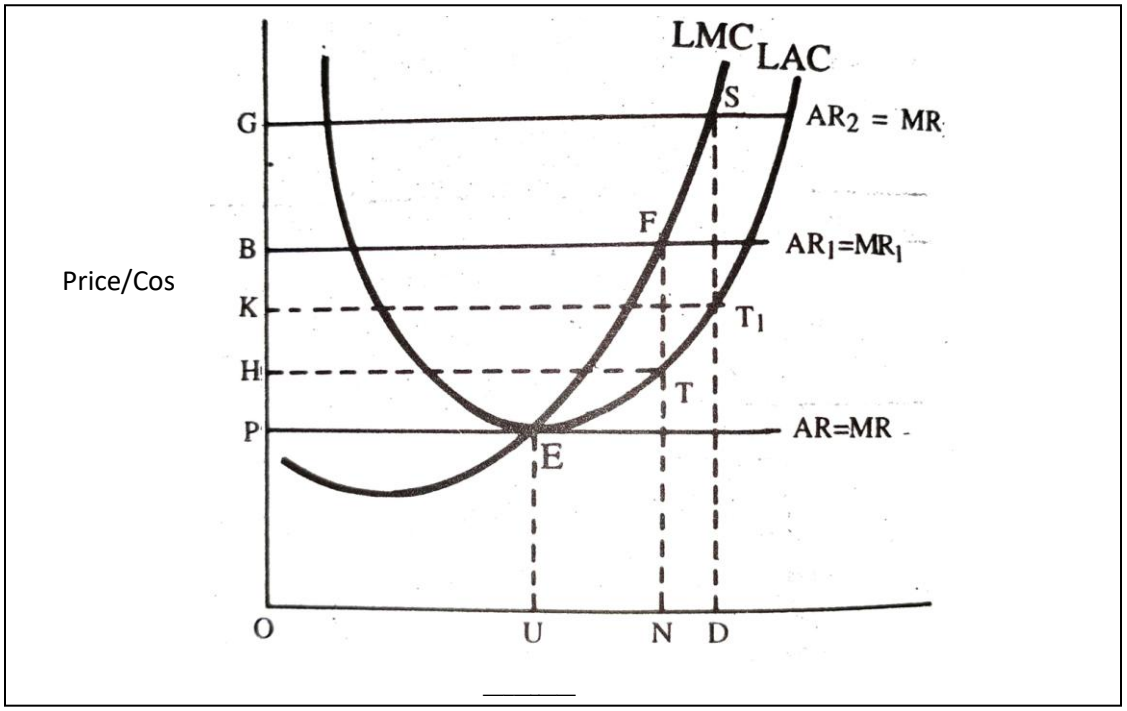

उपरोक्त रेखाचित्र में LAC दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है। उत्पादक संस्थिति में

E बिन्दु पर है , अन्न का मूल्य OP होगा जिससे उत्पादक को पूँजी तथा श्रम की लागत प्रतिपूर्ति के बराबर आय प्राप्त होगी। यदि उपलब्ध समस्त भूमि प्रयोग में न आयी हो तो जनसंख्या वृद्धि के कारण अनाज का मूल्य OP से अधिक हो तो मूल्य में इस प्रकार की वृद्धि अल्पकालिक होगी क्योंकि अप्रयक्त भूमि जोत में आयेगी और मूल्य OP प्राप्त होगी। ऐसा तब तक होगा जब तक कि निष्क्रिय भूमि जोत में रहेगी।

सम्पूर्ण भूमि जोत में प्रयुक्त होने की स्थिति में मूल्य में स्थायी वृद्धि होने पर मूल्य OB हो जाये तो ,उत्पादक LMC में बिन्दु F पर उत्पादन करेगा, जिससे सीमान्त लागत मूल्य के बराबर हो। इस स्थिति में पूँजी तथा श्रम के रूप में लगी औसत लागत तथा मूल्य बीच अन्तर होता है। मूल्य का लागत के ऊपर यह अतिरेक ही 'लगान ' है।

इस प्रकार लगान भूमि की पूर्ति की सीमितता का परिणाम है , जिसके फलस्वरूप मूल्य में वृद्धि के अनुरूप लगान भी वर्धमान होगा।

(2) भेदात्मक लगान :–

यदि भूमि के टुकडे भिन्न –भिन्न उर्वराशक्ति से युक्त हों तथा उनकी गुणवत्ता भी अलग –अलग प्रवृत्ति रखती हो तो यदि उत्तम कोटि की भूमि की पूर्ति उसकी मांग की तुलना में कम हो तो गुण की भिन्नता तथा पूर्ति की सीमितता के कारण जो लगान उत्पन्न होगा वह भिन्न – भिन्न होगा , जिसको भेदात्मक लगान की संज्ञा दी जाती हैं।

रिकार्डो ने दो प्रकार की भूमि का उल्लेख किया –

(a) सीमान्त भूमि :–

वह भूमि जिस पर उत्पादित वस्तुओं से प्राप्त होने वाली आय उत्पादन लागत के बराबर होती हैं , (AR = AC) उसे **सीमान्त भूमि** या लागनरहित भूमि कहते हैं।

(b) अधिसीमान्त भूमि :

ऐसी भूमि जिस पर उत्पादित वस्तुओं से प्राप्त होने वाली आय , उत्पादन लागत की तुलना में अधिक होती है ; (AR > AC) अर्थात इस पर लगान उत्पन्न है। इसे लगानयुक्त भूमि या **अधिसीमान्त भूमि** की संज्ञा दी जाती हैं।

रिकार्डो के अनुसार लगान एक भेदात्मक बचत है । उत्तम तथा खराब भूमि के उत्पादन अन्तर अथवा सीमान्त तथा अधिसीमान्त भूमि के उत्पादन के अन्तर को ही रिकार्डो ने ' लगान ' कहा है।

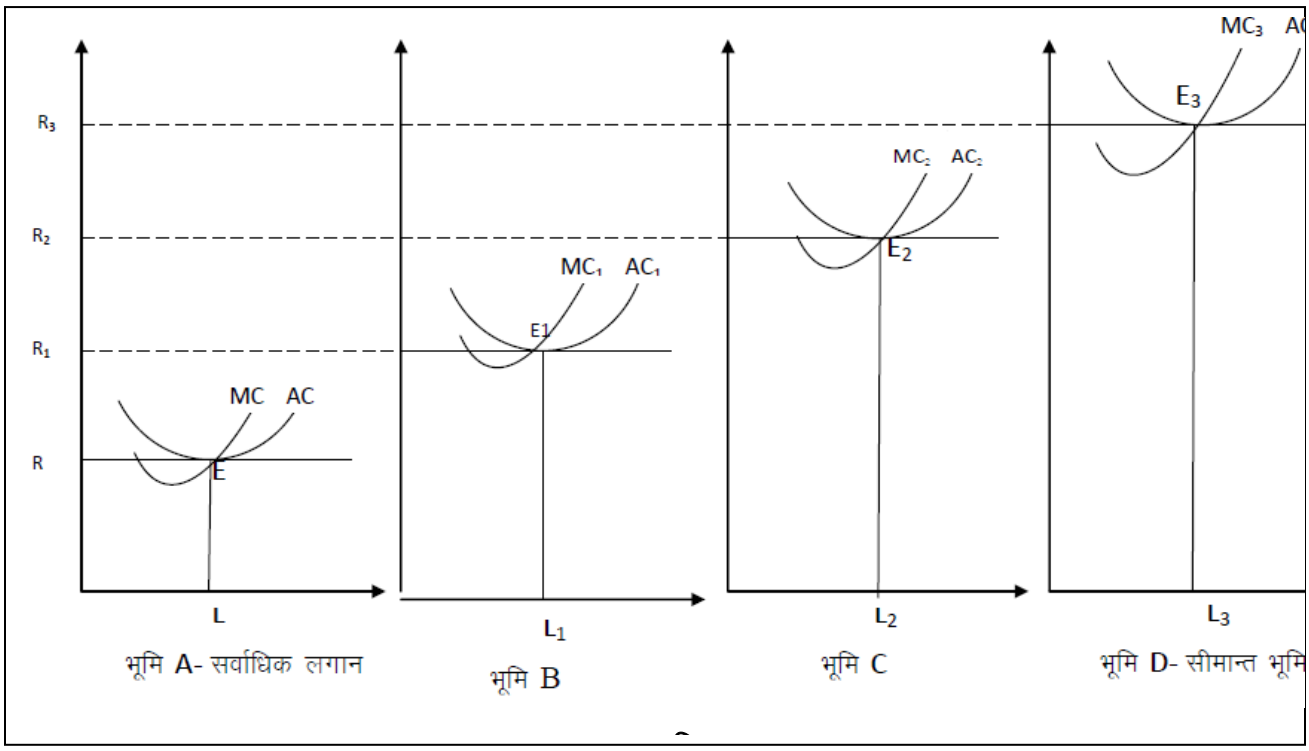

संलग्न रेखाचित्र में चार प्रकार की भूमि का उल्लेख किया गया है , जिसमें स्पष्ट है कि जनसंख्या वृद्धि तथा भूमि की माँग में बढ़ोत्तरी के कारण लगान में वृद्धि होती है। भूमि – A, B, C क्रमशः अधिसीमांत भूमि है, क्योंकि इस पर लगान प्राप्त हो रहा है। भूमि D पर प्राप्त लगान शून्य है , अतः यह सीमान्त भूमि है।

इस प्रकार भूमि की गुणवत्ता में भिन्नता के कारण भूमि के भिन्न – भिन्न टुकड़ों पर भिन्न – भिन्न लगान प्राप्त होता है, इसे ही भेदात्मक लगान कहते हैं।

2.4 रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनायें

- कुछ आलोचकों के अनुसार भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों की मान्यता अव्यवहारिक है।
- सीमान्त भूमि (लगान हीन भूमि) की कल्पना असैद्धान्तिक है।
- लगान के सम्बन्ध में रिकार्डो द्वारा प्रतिपादित ऐतिहासिक क्रम तर्कसंगत नहीं है , क्योंकि उर्वर भूमि पर सबसे अंत में कृषि सम्पन्न होती है।
- पूर्ण प्रतियोगिता तथा दीर्घकाल की मान्यता अव्यावहारिक है ; क्योंकी व्यावहारिक जीवन में सामान्यतः अपूर्ण प्रतियोगिता होती है।

- लगान तथा मूल्य के पारस्परिक सम्बन्ध विचार स्पष्ट नहीं है; क्योंकि कृषि वस्तु का मूल्य सीमान्त भूमि की उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है।
- रिकार्डो के लगान– सिद्धान्त की व्याख्या में माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त तथा क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम सम्बन्धी निराशावादी विचाराधारा निहित है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बाद भी रिकार्डो का लगान सिद्धान्त महत्वपूर्ण है तथा आधुनिक लगान सिद्धान्त को दिशा देने में सफल रहा है।

2.5 लगान का आधुनिक सिद्धान्त

इसकी व्याख्या करने का श्रेय जे. एस. मिल को जाता है ; पर वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप में व्याखा करने का श्रेय श्रीमती जॉन रॉबिन्सन को जाता है। इन्होंने स्पष्ट किया कि श्रेय मात्र कृषि को ही नहीं अपितु अन्य साधनों को भी प्राप्त होता है। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने लगान को विशिष्टता एवं अविशिष्टता का प्रतिफल माना।

विशिष्टता से अभिप्राय –गतिशीलता के अभाव या कमी से है। ऐसे साधनों का मात्रा एक ही उपयोग सम्भव है , जबकि अविशिष्टता से अभिप्राय विद्यामान गतिशीलता से है , जिनका एक से अधिक प्रयोग सम्भव है। साधन की विशिष्टता ही लगान का अंश निर्धारित करती है।

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने लगान को वास्तविक आय तथा स्थानांतरण आय का अन्तर माना है–

लगान = साधन की वास्तविक आय – साधन की स्थानांतरण आय

Rent = AE – TE

वास्तविक आय वह आय होती है , जो एक साधन को कार्य करने के दौरान प्राप्त होती रहती है।जबकि स्थानांतरण आय किसी साधन को एक कार्य को छोड़कर दूसरे कार्य को करने पर वैकल्पिक आय के रूप मे प्राप्त होती है। जो साधन जितना ही अधिक विशिष्ट होगा , उसकी स्थानांतरण आय उतनी हीकम तथालगान उतना ही अधिक होगा।

रॉबिन्सन ने यह बताया कि एक साधन जिस कार्य को कर रहा होता है, उसे ' प्रथम सबसे अच्छा चुनाव ' तथा दूसरे कार्य को जो वह कर सकता है, उसे 'द्वितीय सबसे अच्छा चुनाव ' कहते है। अतः लगान प्रथम सबसे अच्छे चुनाव का ही द्वितीय सबसे अच्छे चुनाव पर आधिक्य है।

(1) यदि साधन पूर्णतः विशिष्ट या पूर्णतः बेलोचदार हो , तो वह पूर्णतः अगतिशील होगा और उसका एक ही प्रयोग सम्भव हो, ऐसा अल्पकाल में होता है। इस परिस्थिति के सन्दर्भ में निम्न मान्यतायें है–

(i) साधन पूर्णतः अगतिशील होगा।

(ii) साधन का एक समय में एक ही प्रयोग सम्भव ।

(iii) साधन पूर्ति सीमित तथा पूर्णतः बेलोचदार होगी।

(iv)

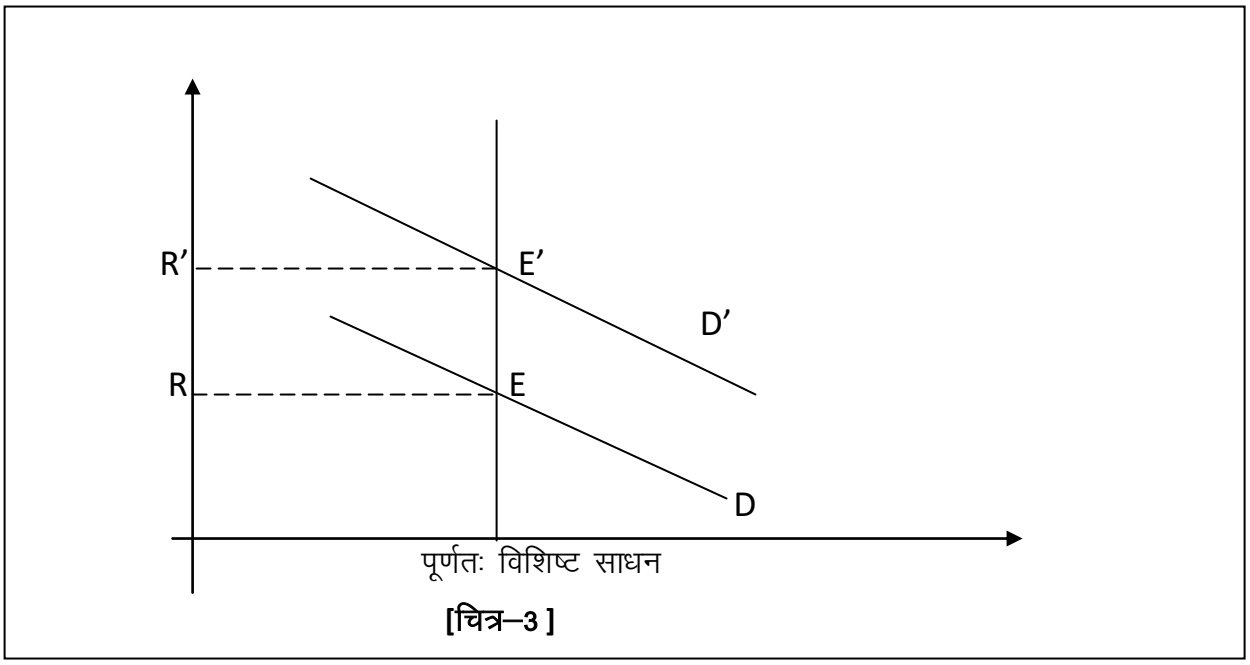

[चित्र–3]

(2) यदि साधन पूर्णतः अविशिष्ट तथा पूर्णतः लोचदार हो तो वह पूर्णतः गतिशील होगा ; ऐसा दीर्घकाल में होता है, जिसकी निम्नलिखित मान्यतायें हैं–

(i) साधन पूर्णतः गतिशील है।

(ii) उसकी पूर्ति की लोच अनन्त है।

(iii) साधनों को प्राप्त होने वाला प्रतिफल उनकी सीमांत आय उत्पादकता के बराबर होगा।

इस स्थिति में साधन को प्राप्त प्रतिफल या सम्पूर्ण आय साधन की स्थानान्तरण आय के बराबर होगी , अतः लगान प्राप्त नहीं होगा , जैसा रेखाचित्र से स्पष्ट है–

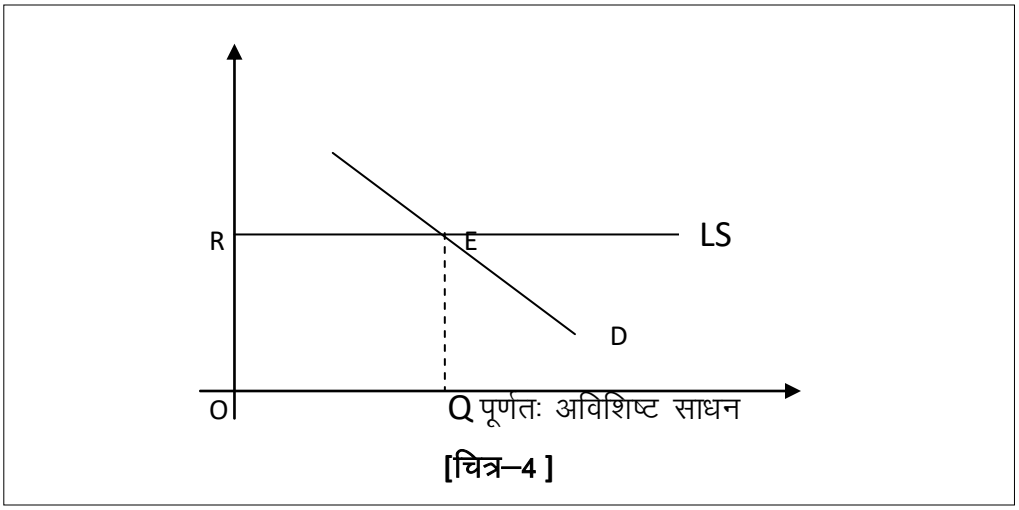

[चित्र–4]

लगान = साधन की वास्तविक आय – साधन की स्थानांतरण आय

= OREQ – OREQ

लगान = 0

(3) यदि उत्पादन का साधन न तो पूर्णतया लोचदार हो और न पूर्णतया बेलोचदार अथवा उत्पत्ति साधन न तो पूर्ण विशिष्ट हो और न पूर्ण अविशिष्ट हो–

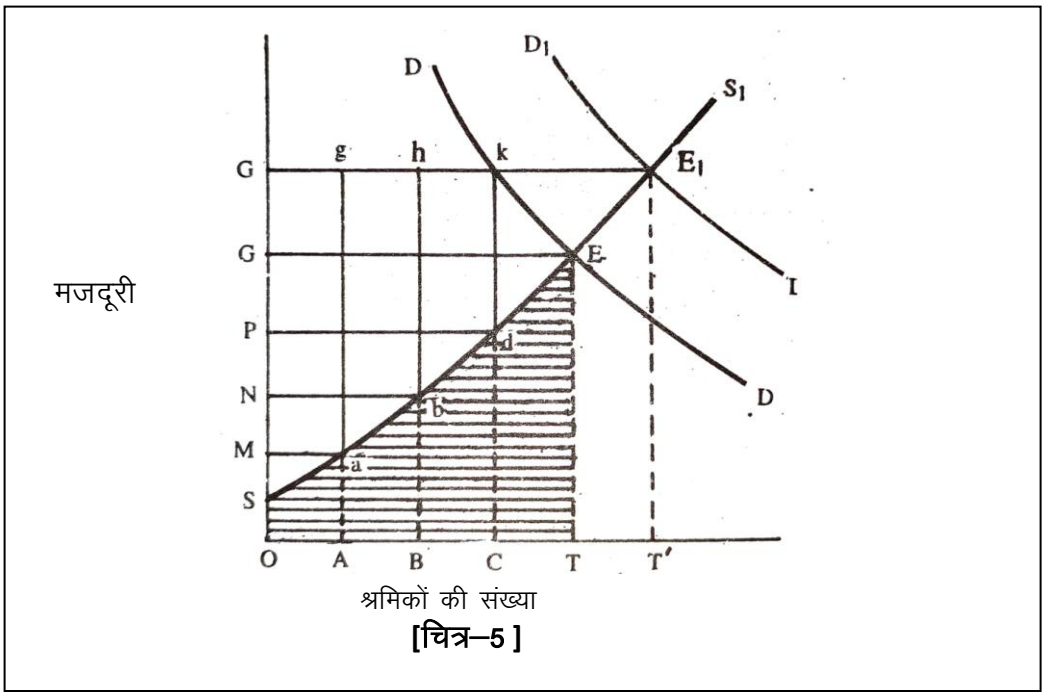

[चित्र–5]

दिये गये चित्र में DD तथा SS' माँग तथा पूर्ति वक्र एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं। साम्य कीस्थिति में मजदूरी ET होगी। इस चित्र में यदि मजदूरी OS है , तो कोई भी श्रमिक कार्य पर नहीं आयेगा। यदि मजदूरी OM हो तो OA श्रमिक आते हैं। स्पष्ट है कि इन OA श्रमिकों किसी अन्य रोजगार में OM से अधिक नहीं मिल रहा था। यही उनका सर्वोत्तम प्रयोग हैं । तथा इसी प्रकार ON,OP तथा OG मजदूरी पर क्रमशः OB, OC तथा OT श्रमिक उपलब्ध होंगे। श्रम की पूर्ति रेखा उनन्यूनतम मजदूरियों को प्रकट करती है, जिन पर श्रमिकों की उनसे सम्बद्ध मात्रायें कार्य करने के लिए तत्पर हैं।

यह भी कहा जा सकता है कि पूर्ति – वक्र के विभिन्न बिन्दु , साधनों के वैकल्पिक लागत के प्रतीक हैं।चूँकि प्रत्येक श्रमिक को OG मजदूरी , जिसका निर्धारण माँग एवं पूर्ति की शक्तियों के द्वारा होगा तथा बाजार में प्रचलित होगी , वही मिलेगी। इसलिए ऐसे श्रमिक जो OM, ON तथा OP मजदूरी पर कार्य करने के लिए तत्पर थे, उन्हें अतिरेक मिलेगा और वास्तविक आय तथा स्थानान्तरण आय अथवा अवसर लागत के अन्तर के आधार पर लगान की गणना इस प्रकार होगी–

वास्तविक आय (कुल मजदूरी) = OG×OT = OTEG

अवसर लागत = पूर्ति रेखा SS1 के नीचे का क्षेत्र = OSET

OT श्रमिकों का लगान = वास्तविक आय – अवसर लागत = OTEG – OSET = GSE

यदि माँग और बढ़ के माँग वक्र D' D' से व्यक्त हो तो लगान में निरंतर वृद्धि होगी।

2.6 बोध प्रश्न

1. लगान से आप क्या समझते हैं?
2. दुर्लभता का लगान क्या है?
3. सीमांत भूमि क्या होती है?

2.7 सारांश

लगान का शब्द का अभिप्राय प्रयोग भूमि के उपयोग के लिए दिये गये प्रतिकल से हैं। मार्शल के अनुसार , **" लगान वह आय हैं , जो भूमि के रूप में प्रकृति द्वारा प्रदत्त निःशुल्क उपहार के रूप में भू–स्वामी को प्राप्त होता हैं।"** इस प्रकार मार्शल प्रदत्त परिभाषा के अनुसार क्लासिकल दृष्टिकोण दृष्टिगोचर होता हैं।

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का लगान सिद्धान्त रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के नाम से जाना जाता हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने लगान को विशिष्टता एवं अविशिष्टता का प्रतिफल माना। विशिष्टता से अभिप्राय –गतिशीलता के अभाव या कमी से है। ऐसे साधनों का मात्रा एक ही उपयोग सम्भव है , जबकि अविशिष्टता से अभिप्राय विद्यामान गतिशीलता से है , जिनका एक से अधिक प्रयोग सम्भव है। साधन की विशिष्टता ही लगान का अंश निर्धारित करती है।

2.8 शब्दावली

- **अधिशेष** – बचा हुआ
- **अविनाशी** – कभी नष्ट न होने वाला
- **प्रसंविदा** – एक प्रकार का समझौता

2.9 संदर्भ ग्रंथ

1. Alternative Theories of Distribution — N. Kaldor
2. Economics of Welfare — A.C. Pigou

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 उत्तर – लगान का शब्द का अभिप्राय प्रयोग भूमि के उपयोग के लिए दिये गये प्रतिकल से हैं।

2 उत्तर – दुर्लभता का लगान औसत उत्पादन लागत (जिसमें लगान नहीं सम्मिलित हैं) के उपर औसत आय का वह आधिक्य है जो भूमि के गुण में एक रूपकता होने के बावजूद भी भूमिपति की भूमि की पुर्ति की सीमितता के कारण प्राप्त होता है।

3 उत्तर – वह भूमि जिस पर उत्पादित वस्तुओं से प्राप्त होने वाली आय उत्पादन लागत के बराबर होती हैं

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. रिकार्डो के लगान सिद्धांत की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिये।

2. आधुनिक लगान सिद्धांत से आप क्या समझते हैं? व्याख्या कीजिये।

खण्ड 4 इकाई–3

मजदूरी : नकद मजदूरी एव असल मजदूरी मजदूरी निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 नकद मजदूरी

3.3 असल मजदूरी

3.4 मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त : माँग–पूर्ति का सिद्धान्त

3.4.1 श्रम की माँग

3.4.2 श्रम की पूर्ति

3.4.3 मजदूरी मूल्य का निर्धारण

3.5 बोध प्रश्न

3.6 सारांश

3.7 शब्दावली

3.8 संदर्भ ग्रंथ

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि –

- मजदूरी और उसके विभिन्न प्रकार का परिचय।
- मजदूरी का आधुनिक सिद्धांत क्या है?
- मजदूरी का मूल्य निर्धारण कैसे होता है?

3.1 प्रस्तावना

कुल उत्पादन का वह भाग जो मजदूर को उत्पादन की क्रिया में उसकी सेवाओं के लिए दिया जाता है, उसे ही मजदूरी कहते हैं। यह श्रम के त्याग का प्रतिफल है। मार्शल के अनुसार, '' श्रम को सेवाओं के लिये दिया गया मूल्य मजदूरी है।''

समय –समय पर मजदूरी –निर्धारण के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये । इनमें से कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त इस प्रकार हैं– जीवन निर्वाह सिद्धान्त, रहन –सहन स्तर सिद्धान्त, मजदूरी कोष सिद्धान्त, सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त, मजदूरी का अवशेष स्वत्व सिद्धान्त माँग एव पूर्ति का आधुनिक सिद्धान्त आदि।

3.2 नकद मजदूरी –

नकद मजदूरी वह मजदूरी होती है, जो किसी श्रमिक को एक निश्चित समय में कार्य करने के लिये दी जाती है। नकद मजदूरी श्रमिक को द्रव्य या मुद्रा के रूप में मिलती है, जिससे वह अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

3.3 असल मजदूरी

इसे वास्तविक मजदूरी भी कहते हैं। एक श्रमिक अपनी नकद मजदूरी की सहायता से जो वस्तुएँ एवं सेवायें क्रय कर सकता है, उसे असल मजदूरी कहते हैं। यहाँ नकद मजदूरी के साथ अन्य सुविधायें भी असल मजदूरी में शामिल होती हैं, जो श्रमिक को प्रतिफल में प्राप्त होती हैं।

3.4 मजदूरी का आधुनिक सिद्धान्त : माँग–पूर्ति का सिद्धान्त

मजदूरी – निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त माँग तथा पूर्ति का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त अनुसार श्रम की इकाई का मूल्य अथवा पारितोषिक –निर्धारण भी उसकी माँग एवं पूर्ति के द्वारा होता

है। श्रम की माँग सीमान्त –उत्पादकता तथा श्रम की पूर्ति उसके त्याग पर निर्भर है। जहाँ दोनों एक – दूसरे के बराबर होंगे, वहीं मजदूरी निर्धारित होती है।

3.4.1 श्रम की माँग

श्रम की माँग व्यत्पन्न माँग होती हैं, जो उस वस्तु के कारण होती है, जिसका उत्पादन श्रम की सहायता से किया जाता है, तथा उस वस्तु के विक्रय से साहसी को लाभ प्राप्त होता है। उत्पादित वस्तु की माँग प्रत्यक्ष माँग होती है। श्रम की माँग उसकी ' सीमान्त आय उत्पादकता पर निर्भर होती है। श्रम की सीमान्त आय उत्पादकता को प्रदर्शित करने वाला वक्र ही श्रम का माँग वक्र होता है।

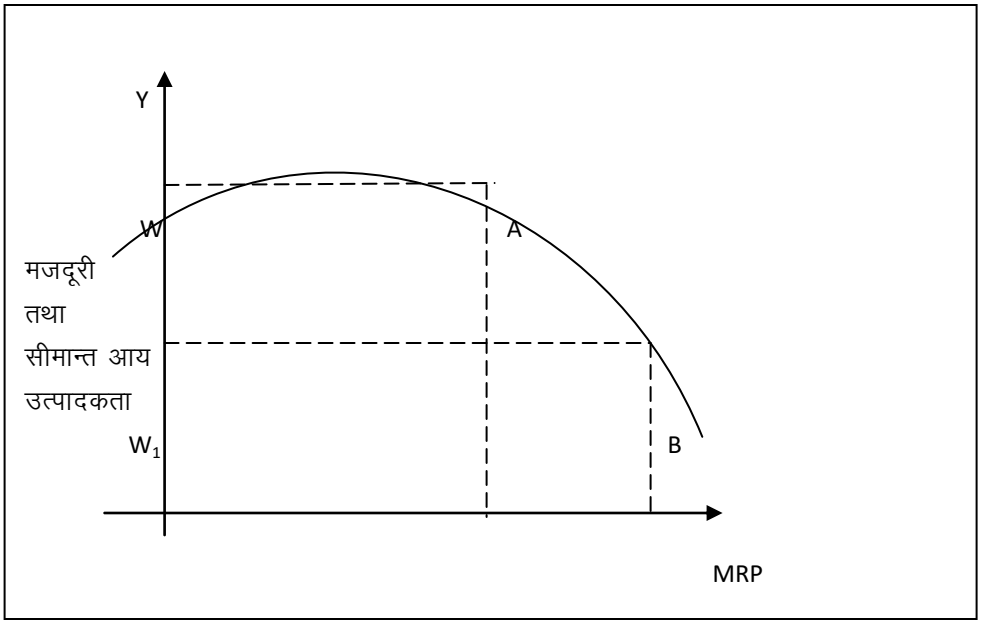

कसी उद्योग में श्रम हेतु माँग वक्र प्राप्त करने के लिये , उस उद्योग में संलग्न समस्त फर्मों के माँग वक्र (MRP) को जोड़ देते हैं।

3.4.2 श्रम की पूर्ति

पूर्ति से तात्पर्य श्रमिकों की उस मात्रा से है , जो मजदूरी की विभिन्न दरों पर सेवा देने हेतु तत्पर हो। मजदूरी की दर बढ़ने श्रम की पूर्ति बढ़ जाती है। श्रम की पूर्ति उसकी लागत – सीमान्त त्याग –पर निर्भर करती है। श्रम की पूर्ति अनेक आर्थिक तथा अनार्थिक कारणों से प्रभावित होती है। मजदूरी दर में परिवर्तन के फलस्वरूप प्रतिस्थापन प्रभाव तथा आय प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। मजदूरी बढ़ने के कारण अधिक आय अर्जित करने की इच्छा पर जब श्रमिक आराम को अधिक कार्य से प्रतिस्थापित करें तो इसे **प्रतिस्थापन प्रभाव** कहते हैं।दूसरी ओर यदि मजदूरी वृद्धि के कारण यदि श्रमिक अधिक कार्य करने की जगह आराम को वरीयता दें , तो यह **आय प्रभाव** है।

यदि मजदूरी में वृद्धि के कारण श्रमिक अधिक आराम पसंद करें ,तो पूर्ति वक्र के स्वरूप का ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता । पूर्ति वक्र इन दोनों प्रभावों की सापेक्षिक शक्तियों पर निर्भर करता है। (पूर्ति = आय प्रभाव + प्रतिस्थापन प्रभाव) यदि आय प्रभाव इतना ऋणात्मक हो कि वह प्रतिस्थापन प्रभाव को समाप्त कर दे, तो पूर्ति वक्र पीछे मुड़ जायेगा। संलग्न चित्र में पूर्ति

वक्र आरम्भ प्रतिस्थापन प्रभाव को दर्शाता है , परंतु एक सीमा के बाद आय प्रभाव शक्तिशाली हो जाता है ,इस स्थिति में मजदूरी की वृद्धि के बाद भी श्रम की पूर्ति कम होती जाती है।

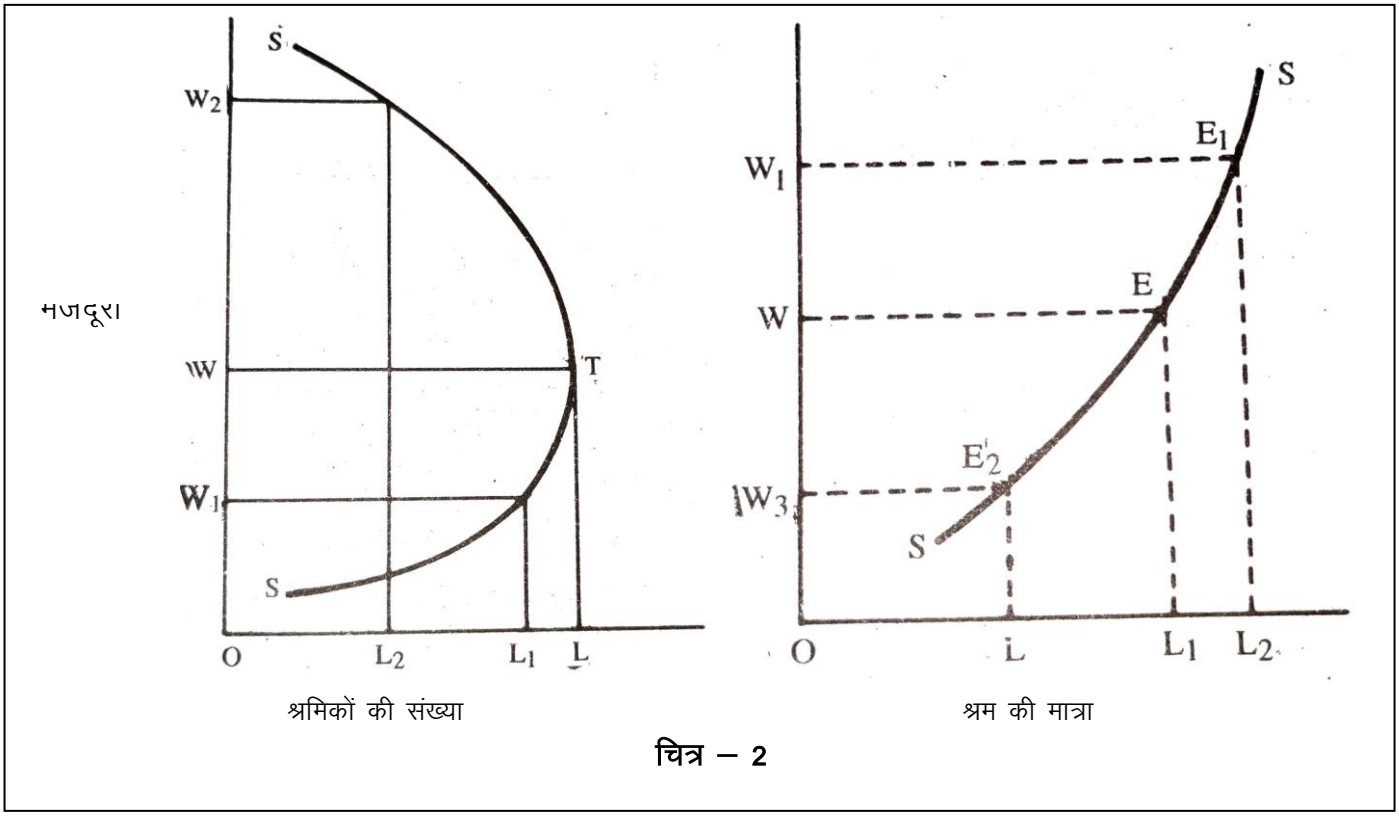

चित्र – 2

उपरोक्त दांये रेखाचित्र में पूर्ति वक्र यह प्रदर्शित करता है कि आय प्रभाव की अपेक्षा प्रतिस्थापन प्रभाव अधिक शक्तिशाली है।

3.4.3 मजदूरी मूल्य का निर्धारण

श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण करने के सन्दर्भ में दो स्थितियाँ होती हैं–

(क) जब साधन बाजार तथा वस्तु बाजार दोनों में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो –

श्रम का मूल्य , श्रम की माँग तथा पूर्ति के द्वारा निर्धारित होगा। मजदूरी दर वहाँ निर्धारित होगी , जहाँ माँग– पूर्ति के बराबर हो जाय। चूँकि श्रम की माँग उसकी सीमान्त आय उत्पादकता पर निर्भर करती है। अतः सतुंलन की स्थिति में श्रम की मजदूरी तथा सीमान्त आय उत्पादन भी बराबर होगा क्योंकि साहसी अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करेगा। माँग तथा पूर्ति के द्वारा मजदूरी निर्धारण को निम्नलिखित रेखाचित्र में दर्शाया गया है।–

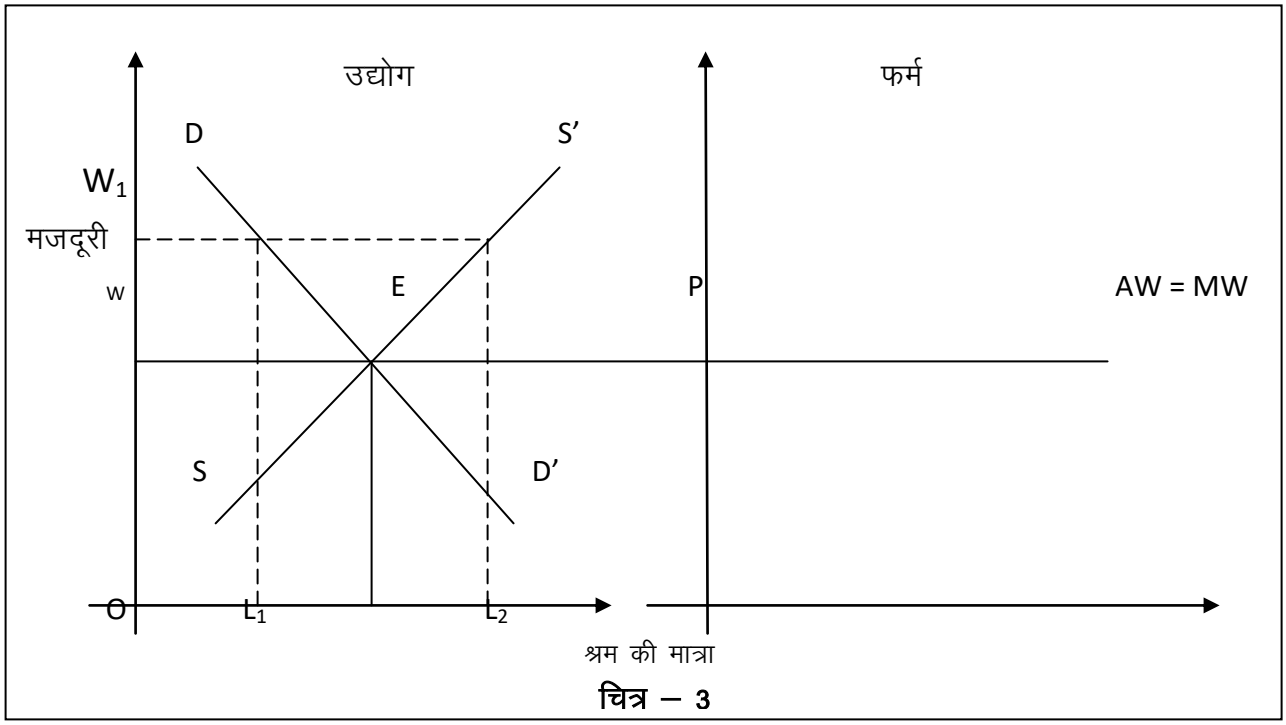

चित्र – 3

उपरोक्त स्थिति में श्रम को क्रय करते हुये , प्रत्येक फर्म दी गयी मजदूरी पर अपने श्रमिकों को इस प्रकार समायोजित करेगी , जिससे उसे अधिकतम लाभ की प्राप्ति हो सके। पूर्ण प्रतियोगिता के कारण कोई भी फर्म श्रम के क्रय सम्बन्धी अपने व्यवहार के द्वारा श्रम के मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकती है।

(ख) जब श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो पर वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता/एकाधिकार की स्थिति हो–

श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता होने के कारण औसत मजदूरी तथा सीमांत मजदूरी रेखा प्रचलित दर के स्तर पर आधार के समानान्तर होगी। अर्थात MRP= MW=AW.

चूँकि वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता है ,अतः सीमान्त आय– उत्पादन (MRP) ,सीमान्त मूल्य उत्पादन MVP से कम होगा। क्योंकि –

$\boxed{MRP = MPP \times MR}$ $\boxed{MVP = MPP \times AR}$

अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत आय , सीमान्त आय से अधिक होगा। (AR>MR) इसका अर्थ यह है कि श्रमिक को प्राप्त मजदूरी उसके सीमान्त आय के बराबर तो होगी पर उसका शोषण होगा , जो उसके सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा मजदूरी दर के अन्तर के बराबर होगा। श्रम के होने वाले शोषण को एकाधिकारिक शोषण कहते हैं।

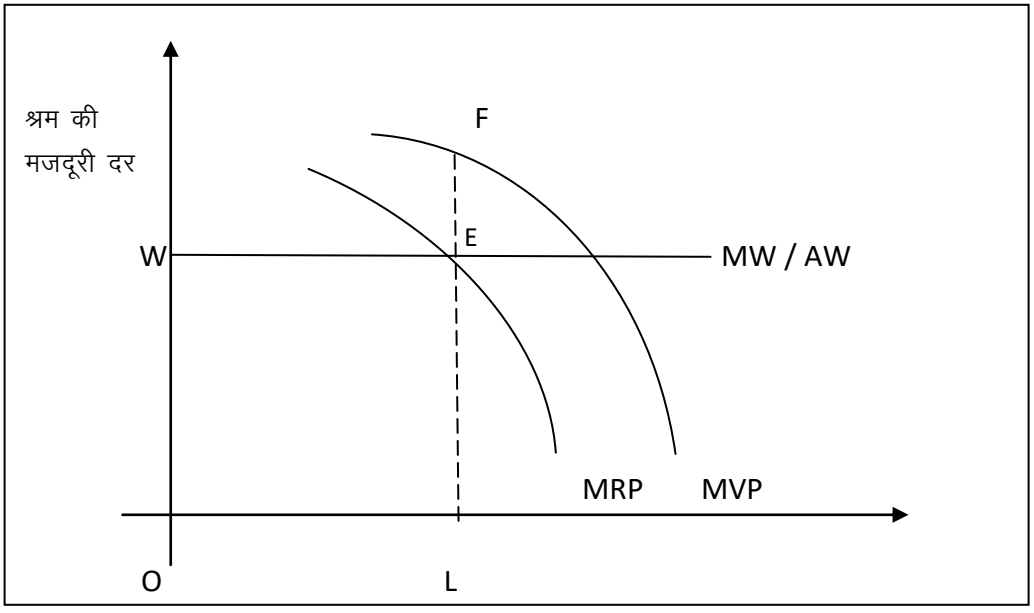

उपरोक्त रेखाचित्र में EF श्रम की प्रति इकाई एकाधिकारी शोषण को दर्शाता है।

(ग) क्रेताधिकार – जब श्रम –बाजार में नियोक्ता श्रम का अकेला क्रेता हो –

वस्तु बाजार में अकेले विक्रेता की स्थिति को एकाधिकार कहते हैं। इसी प्रकार साधन/श्रम बाजार में जब क्रेता एकमात्र हो तो , स्थिति क्रेताधिकार कहलाती है। इस प्रकार की स्थिति व्यवहार में सामान्यतया तब पायी जाती है , जब कि उत्पादक को विशिष्ट वस्तु के उत्पादन में एकाधिकार प्राप्त हो। क्रेताधिकार में भी दो स्थितियाँ पायी जाती हैं–

i. जब श्रम/साधन बाजार में क्रेताधिकार तथा वस्तु बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति हो–

इस स्थिति में सीमान्त आय उत्पादन , सीमान्त मूल्य उत्पादन तथा सीमान्त मजदूरी परस्पर बराबर होंगे पर यह समानता औसत मजदूरी या श्रम के मूल्य से ऊपर होगी।

$$MVP = MRP = MW > AW$$

ii. जब साधन बाजार में क्रेताधिकार तथा वस्तु बाजार में एकाधिकार हो–

इस स्थिति में सीमान्त आय उत्पादन, सीमान्त मजदूरी के बराबर होगा पर सीमान्त मूल्य उत्पादन संतुलन के स्तर से ऊँचा होगा पर मजदूरी कम होगी–

$$MVP > MRP = MW > AW$$

3.5 बोध प्रश्न

1. नकद मजदूरी क्या है?

2. असल मजदूरी क्या होती है?

3.6 सारांश

मार्शल के अनुसार, '' श्रम को सेवाओं के लिये दिया गया मूल्य मजदूरी है।'' समय –समय पर मजदूरी –निर्धारण के अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये । इनमें से कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त इस प्रकार हैं– जीवन निर्वाह सिद्धान्त, रहन –सहन स्तर सिद्धान्त, मजदूरी कोष सिद्धान्त, सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त, मजदूरी का अवशेष स्वत्व सिद्धान्त माँग एव पूर्ति का आधुनिक सिद्धान्त आदि। मजदूरी – निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त माँग तथा पूर्ति का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त अनुसार श्रम की इकाई का मूल्य अथवा पारितोषिक –निर्धारण भी उसकी माँग एवं पूर्ति के द्वारा होता है। श्रम की माँग सीमान्त –उत्पादकता तथा श्रम की पूर्ति उसके त्याग पर निर्भर है। जहाँ दोनों एक – दूसरे के बराबर होंगे, वहीं मजदूरी निर्धारित होती है।

3.7 शब्दावली

असल – वास्तविक

संलग्न – लगा हुआ

उत्पादकता – उत्पादन करने की क्षमता

3.8 संदर्भ ग्रंथ

1.	Pricing, Distribution and Employment	J.S.Bain
2.	The Theory of Wages	J.R. Hicks
3.	Theory of Wages	Paul Douglas
4.	Income Distribution	J. Pen

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.उत्तर – नकद मजदूरी वह मजदूरी होती है, जो किसी श्रमिक को एक निश्चित समय में कार्य करने के लिये दी जाती है।

2.उत्तर –एक श्रमिक अपनी नकद मजदूरी की सहायता से जो वस्तुएँ एवं सेवायें क्रय कर सकता है, उसे असल मजदूरी कहते हैं।

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मजदूरी के आधुनिक सिद्धांत की व्याख्या करिये।

खण्ड 4 इकाई–4

ब्याज : क्लासिकल सिद्धान्त, ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 ब्याज (Interest)
4.3 क्लासिकल/परम्परागत ब्याज का सिद्धान्त
4.3.1 बचत की माँग (demand of surplus)
4.3.2 बचत की पूर्ति (Supply of surplus)
4.3.3 ब्याज दर की संस्थिति का निर्धारण
4.3.4 क्लासिकल सिद्धान्त की आलोचनायें
4.4 कीन्स : ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त
4.4.1 मुद्रा/तरलता की पूर्ति
4.4.2 मुद्रा/तरलता की माँग
4.4.3 ब्याज की दर का निर्धारण
4.5 बोध प्रश्न
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 संदर्भ ग्रंथ
4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि –

- ब्याज क्या होता है?
- परम्परागत ब्याज का सिद्धांत क्या होता है?
- कीन्स द्वारा प्रतिपादित ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धांत क्या है?

4.1 प्रस्तावना

ब्याज पूँजी के परिमाण का प्रतिफल होता है। इस इकाई में ब्याज को परिभाषित करने के साथ साथ परम्परागत ब्याज सिद्धांत की व्याख्या विस्तृत रूप से की गयी है, जिससे छात्र इस सिद्धांत को कुशलता पूर्वक समझ सकें। कीन्स द्वारा प्रतिपादित ब्याज के तरलता अधिमान सिद्धांत को उसके विभिन्न आयामों के साथ समझाया गया है और ब्याज दर निर्धारण की उचित रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुति की गयी है।

4.2 ब्याज (Interest)

ब्याज पूँजी के परिमाण का प्रतिफल है। अर्थव्यवस्था में जब कोई पूँजीपति अपनी पूँजी को उधार में ऋण के रूप में देता है, तो वह निजी उपभोग की वस्तुओं का त्याग करता हैं और इस त्याग के बदले में वह कुछ अतिरिक्त प्रतिफल प्राप्त करता है, जिसे ब्याज (Interest) कहते हैं।

मेयर्स के अनुसार–"ब्याज वह कीमत है, जो कि उधार देय योग्य कोष के प्रयोग के लिए दिया जाता है।"

4.3 क्लासिकल/परम्परागत ब्याज का सिद्धान्त

इसे क्लासिकल या परम्परागत या प्रतिष्ठित ब्याज के निर्धारण का सिद्धान्त भी कहते है।इस सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रो0 मार्शल ने किया , अतः इसे ' मार्शल का ब्याज सिद्धान्त ' भी कहा जाता है। पीगू, कैसेल, वालरा, टासिग आदि अर्थशास्त्रियों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया । मार्शल ने बताया कि किसी भी समय में ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा, जहाँ बचत की माँग, बचत की पूर्ति के बराबर हो, इसलिये इस सिद्धान्त को माँग एवं पूर्ति का सिद्धान्त भी कहा जाता है।

4.3.1 बचत की माँग (demand of surplus)

बचत की माँग या निवेश की माँग अर्थव्यवस्था में रहने वाले उत्पादकों या नियोक्ताओं द्वारा निवेश के लिये की जाती है। यह ब्याज दर के साथ विपरीत सम्बन्ध रखती है।

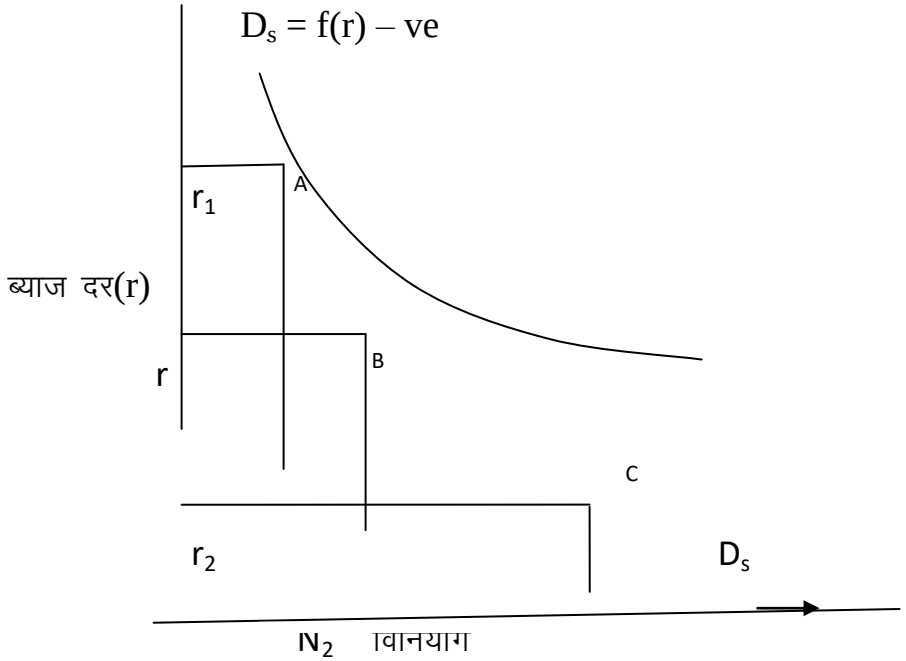

उपरोक्त रेखाचित्र से स्पस्ट है कि विनियोग तथा ब्याज की दर में विलोम सम्बन्ध है अर्थात जैसे–जैसे ब्याज की दर घटती जायेगी, इसके फलस्वरूप विनियोग की माँग में वृद्धि होगी।

4.3.2 बचत की पूर्ति (Supply of surplus)

बचत की पूर्ति बचत की उन मात्राओं को प्रदर्शित करती है, जिनको बचतकर्ता सम्भावित ब्याजदारों पर पूर्ति करने के लिये तत्पर होता है। बचत की पूर्ति , ब्याज की दर के साथ प्रत्यक्ष धनात्मक सम्बन्ध रखती है।

$S_s = f(r) + re$

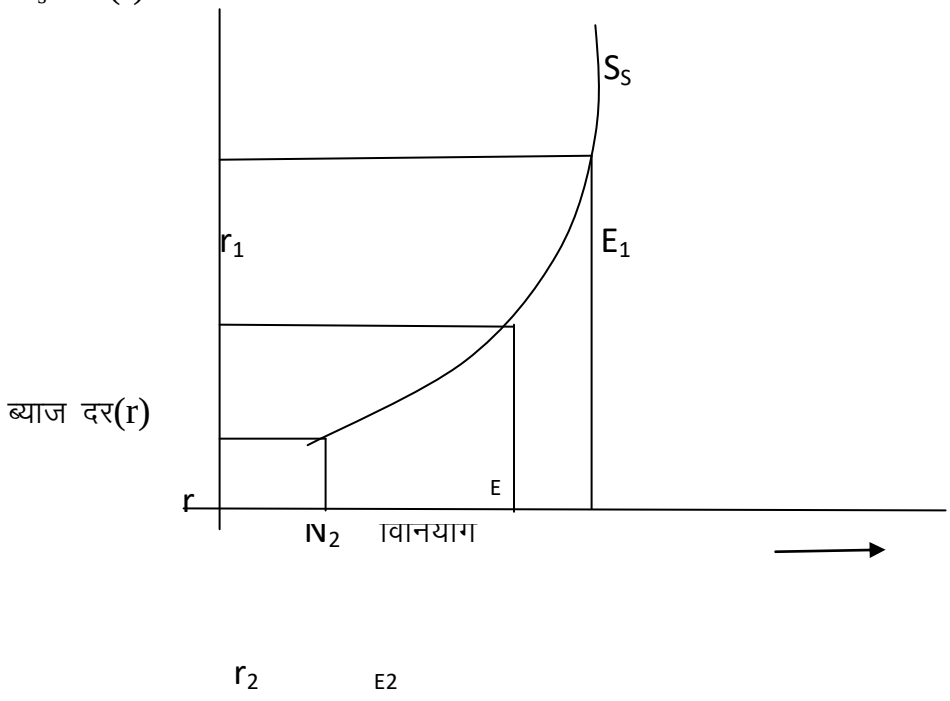

उपरोक्त रेखाचित्र से स्पष्ट है जैसे–जैसे ब्याज की दर ऊँची होती जायेगी, बचत की पूर्ति योग्य मात्रा भी बढ़ती चली जायेगी। or_2 ब्याज दर पर बचत ON_2 तथा or ब्याज दर पर बचत ON है , जो ON_2 से अधिक है।

4.3.3 ब्याज दर की संस्थिति का निर्धारण

मार्शल के अनुसार बचत की माँ एवं बचत की पूर्ति दोनों अधिक लोचदार है, अतः संतुलित ब्याज दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा , जहाँ पर बचत की माँग, बचत की पूर्ति के बराबर होगी।

अर्थात , बचत की माँग = बचत की पूर्ति

संतुलन बिन्दु से सम्बन्धित ब्याज दर ही संतुलित ब्याज की दर कहलाती है।

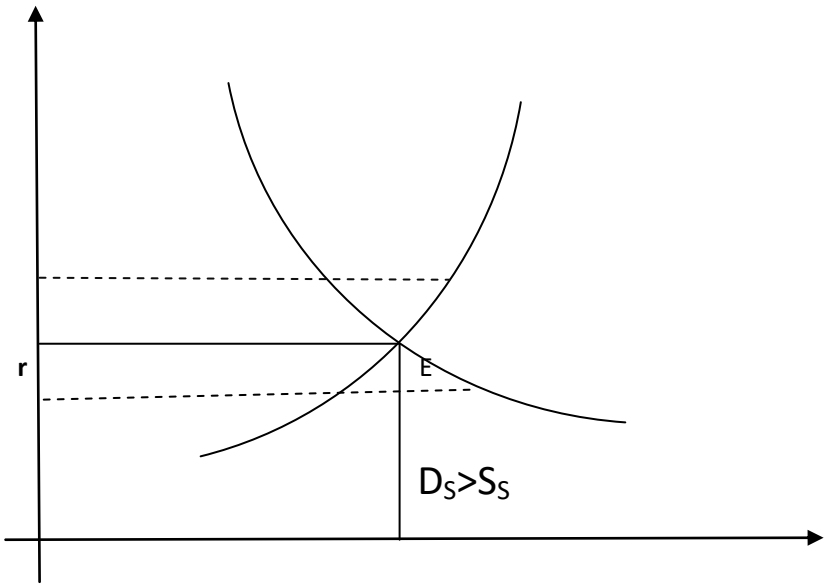

यदि संतुलन में किसी प्रकार का परिवतन होता है , तो निवेश एवं बचत की शक्तियों के अधिक लोचशील होने के कारण संतुलन की स्थिति पुनः कुछ समय पश्चात् प्राप्त हो जाती है, जैसा कि उपरोक्त रेखाचित्र से स्पष्ट है, जिसमें संतुलन बिन्दु E पर है, जिससे सम्बन्धित ब्याज दर (r) तथा विनियोग की मात्रा OQ है।

इस प्रकार ब्याज की दर वह , मूल्य जो विनियोग किये जाने वाले साधनों की माँग को उनकी बचत/पूर्ति के बराबर कर देता है।

4.3.4 क्लासिकल सिद्धान्त की आलोचनायें

जॉन मेनॉर्ड कीन्स ने इस सिद्धान्त की कटु आलोचना की तथा एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। कीन्स द्वारा की गयी प्रमुख आलोचनायें निम्नलिखित हैं–

(1) ब्याज बचत करने का पारितोषिक न होकर तरलता के परित्याग का प्रतिफल है।

(2) बचत तथा पूँजी एक दूसरे के पर्याय नहीं हैं।

(3) इस सिद्धान्त द्वारा ब्याज की दर अनिर्धार्य रहेगी, अतः यह क्लासिकल सिद्धान्त हमारे सम्मुख कोई निर्धार्यता नहीं दर्शाता।

(4) पूर्ण रोजगार की मान्यता गलत है।

(5) मुद्रा की पूर्ति की उपेक्षा गलत हैं।

4.4 कीन्स : ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को कीन्स के ब्याज निर्धारण का सिद्धान्त भी कहते है, जिसकी व्याख्या कीन्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'General theory of Employment Interest and money(1936) में किया। कीन्स ने बताया की मुद्रा एक तरल वस्तु है, इसे तरलता भी कहा जाता है। आर्थिक ईकाइयाँ अपने व्यवहारों को पूरा करने के लिये अपनी सम्पति का कुछ भाग अत्यन्त तरल सम्पत्तियों जैसे– नकद मुद्रा, बॉण्ड आदि के रूप में रखना चाहती हैं। जब इस तरल कोष से कुछ उधार दिया जाता है, तो तरलता का परित्याग होता है, और इस तरलता के परित्याग के बदले जो पारितोषिक प्राप्त होता है, उसे ही ब्याज कहते है।

कीन्स के अनूसार –"ब्याज वह प्रतिफल है, जो एक निश्चित समय के लिये तरलता के परित्याग हेतु प्राप्त होता है। "

कीन्स के अनुसार– ''ब्याज का निर्धारण निवेश एवं बचत की समानता के आधार पर न हो कर बल्कि मुद्रा की माँग एवं मुद्रा की की पूर्ति की समानता के द्वारा होती है।"मुद्रा को दो प्रकार से प्रयोग कर सकते हैं– नकद रूप में रखें, या फिर बॉन्ड/ प्रतिभूतियों में निवेश करें।

4.4.1 मुद्रा/तरलता की पूर्ति

कीन्स के अनुसार, मुद्रा/तरलता की पूर्ति का निर्धारण अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय बैंक या मौद्रिक अधिकारी द्वारा की जाती है। यह वाह्य रूप से निर्धारित होती है। इसलिये यह किसी भी अर्थव्यवस्था में निश्चित एवं स्थिर बनी रहती है। यह ब्याज निरपेक्ष होती है, क्योंकि ब्याज की दर का कोई प्रभाव मुद्रा की पूर्ति पर नहीं पड़ता है, इस प्रकार मुद्रा की पूर्ति पूर्णतः बेलोच होती है।

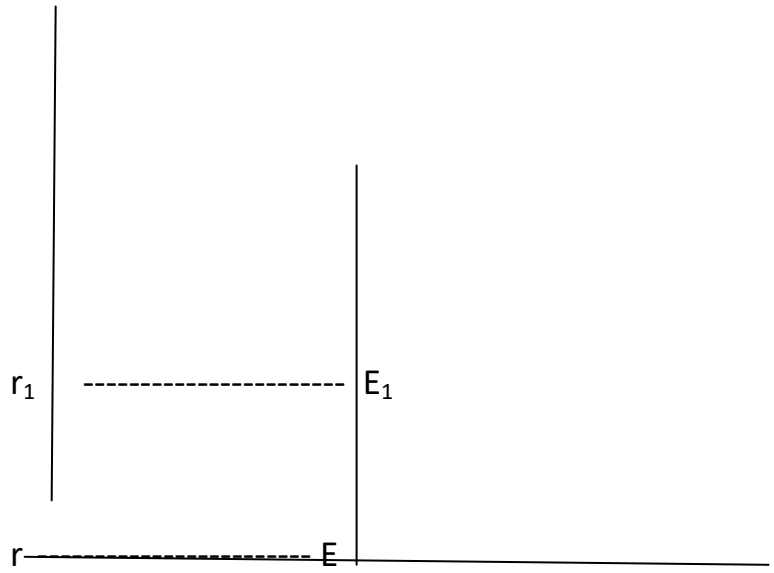

4.4.2 मुद्रा/तरलता की माँग

मुद्रा की माँग तरलता पसंदगी की मांग होती है। मुद्रा की मांग अर्थव्यवस्था में संलग्न लोगों द्वारा की जाती है। कीन्स ने यह स्पष्ट किया कि मुद्रा की मांग तीन उद्देश्यों के लिये की जाती है–

(I)लेन –देन/सौदेबाजी/व्यापारिक उद्देश्य[L_T या L_1]-

लेन–देन या व्यापारिक उद्देश्य से की गयी मुद्रा की माँग का अभिप्राय मुद्रा की उस मात्रा से है, जो व्यक्ति तथा फर्मे अपने दैनिक लेन –देन को पूरा करने के लिये रखती है। यह सिर्फ आय से प्रभावित होती है, ब्याज से नहीं।

$$L_T = f(y) + ve$$

(II) <u>दूरदर्षिता/पूर्वोपाय उद्देश्य [L_P या L_2]</u>–

कीन्स के अनुसार अर्थव्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति, फर्म आदि अपनी आय का एक निश्चित प्रतिशत भाग अप्रत्यशित घटनाओं जैसे – दुर्घटना, बीमारी इत्यादि का सामना करने हेतु अपने पास कुछ नकद शेष के रूप में रखता है, जिस पर ब्याज की दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, यह सिर्फ आय से प्रभावित होती है।

कीन्स ने L_T तथा L_P को जोड़कर L_1 के रूप में प्रदर्शित किया क्योंकि दोनों ही आय स्तर का फलन होती हैं।

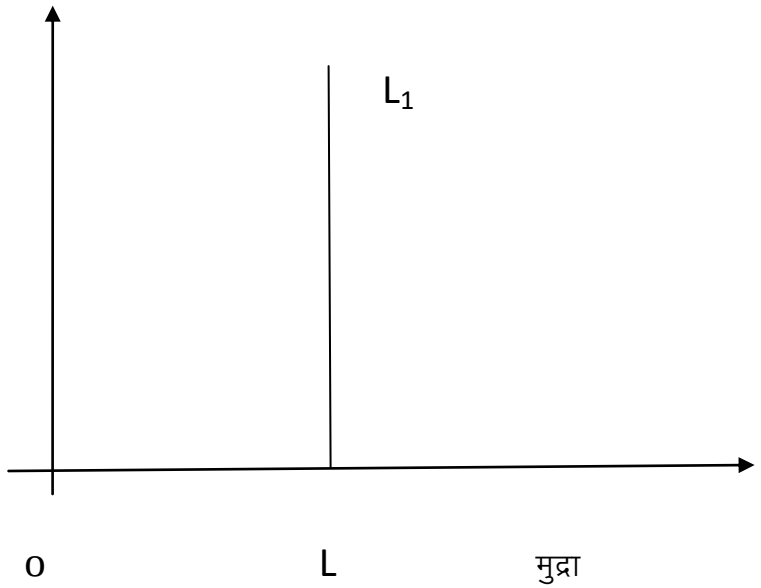

(III) <u>पूर्वकल्पी प्रेरक या सट्टा उद्देष्य [L_S या L_3]</u>–

कीन्स ने यह बताया कि अर्थव्यवस्था में सट्टेबाजी के लिये मुद्रा की माँग की जाती है, जो ब्याज दर से विपरीत रूप से सम्बन्धित/ प्रभावित होती है। अर्थात्

$$L_s = f(r)\text{-ve}$$

कीन्स के अनुसार अर्थव्यवस्था में लोग अपने पास इसलिए भी मुद्रा रखना चाहते हैं, जिससे वे प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय से सट्टा लाभ प्राप्त कर सकें। अर्थव्यवस्था में सट्टा–लाभ दो रूपों में कार्य करता है–

एक तरफ वो लोग हैं, जो भविष्य में सम्पत्ति या बाँड़ का मूल्य बढ़ाने का अनुमान लगाते हैं, फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में अधिक निवेश करते हैं, क्योकि उन्हें पूँजीगत लाभ होने की सम्भावना होती है। उन्हें तेजड़िये (Bulls) कहा जाता है।

दूसरी तरफ वे लोग, जो भविष्य में शेयर या बॉंड़ के मूल्यों में कमी का अनुमान लगाते हैं तथा बॉंड़ ,शेयर का विक्रय आरम्भ कर देता हैं, क्योंकि उन्हें पूँजीगत हानी होने की सम्भावना होती है। इन्हें मंदड़िये (Bears) कहते हैं। कीन्स के अनुसार ब्याज की दर तथा बाण्ड के मूल्य के बीच विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है।

$$L_s = f(r)\text{-ve}$$

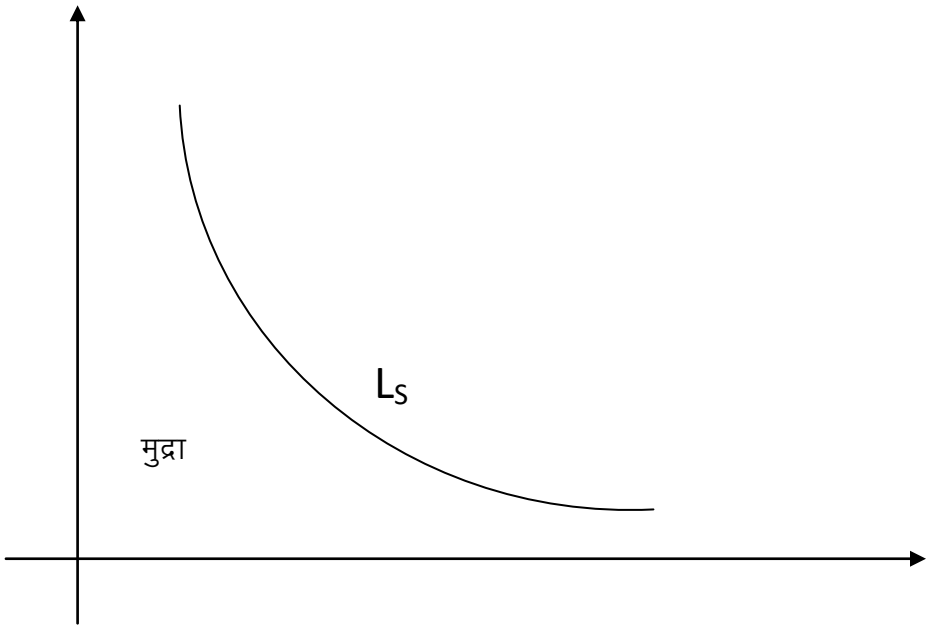

मुद्रा की कुल माँग – व्यापारिक उद्देश्य (L_T), पूर्वोपाय उद्देश्य (L_P), तथा पूर्वकल्पी उद्देश्य (L_S) से की गयी मुद्रा माँगों का योग होती है। अर्थात

मुद्रा की कुल माँग – व्यापारिक उद्देश्य (L_T), पूर्वोपाय उद्देश्य (L_P), तथा पूर्वकल्पी उद्देश्य (L_S) से की गयी मुद्रा माँगों का योग होती है। अर्थात

$$M_D = L_T + L_P + L_S$$

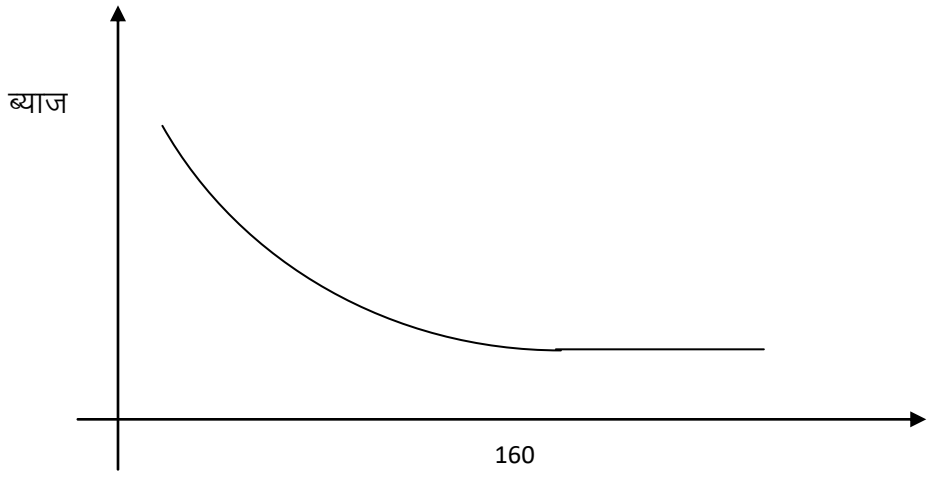

4.4.3 ब्याज की दर का निर्धारण

कीन्स के अनुसार ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा, जहाँ मुद्रा की माँग, मुद्रा के पूर्ति के बराबर होगा। अर्थात्

$$M_D = M_S$$

➢ $M = L$

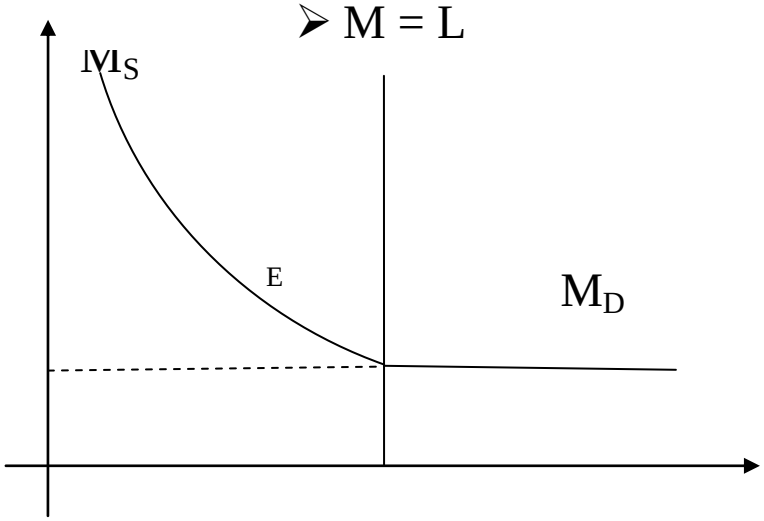

मुद्रा

रेखाचित्र में E बिन्दु पर संस्थिति है, जहाँ मुद्रा की माँग , मुद्रा की पूर्ति के बराबर ($N_D = M_S$) है और संतुलित ब्याज दर or है ।

यदि केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा की पूर्ति में लगातार वृद्धि की जाती है, तो मुद्रा की पूर्ति वक्र दाहिने विवर्तित हो जायेगा और ब्याज दर (r) निरन्तर घटती जाती है लेकिन एक निश्चित सीमा के बाद मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि ब्याज दर को प्रभावित नहीं कर पायेगी । यह ब्याज दर न्यून ब्याज दर होती है, जिसके बाद मौद्रिक नीति अप्रभावी हो जाती है, इसे तरलता जाल की स्थिति कहते हैं। जैसा निम्न रेखाचित्र में E1 बिन्दु से स्पष्ट है।

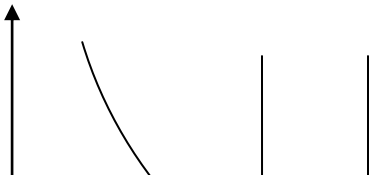

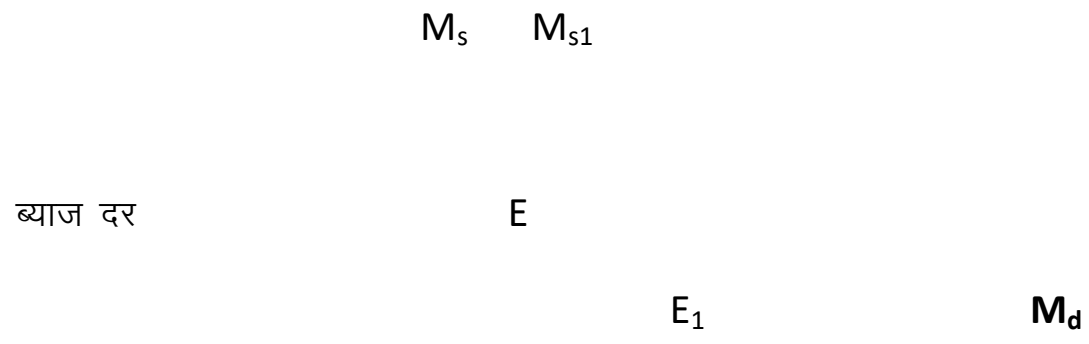

4.5 बोध प्रश्न

1. ब्याज क्या होता है?

2. बचत की माँग क्या है?

4.6 सारांश

ब्याज पूँजी के परिमाण का प्रतिफल है। अर्थव्यवस्था में जब कोई पूँजीपति अपनी पूँजी को उधार में ऋण के रूप में देता है, तो वह निजी उपभोग की वस्तुओं का त्याग करता हैं और इस त्याग के बदले में वह कुछ अतिरिक्त प्रतिफल प्राप्त करता है । क्लासिकल या परम्परागत या प्रतिष्ठित ब्याज के निर्धारण का सिद्धान्त में मार्शल ने बताया कि किसी भी समय में ब्याज की दर का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा, जहाँ बचत की माँग, बचत की पूर्ति के बराबर हो, इसलिये इस सिद्धान्त को माँग एवं पूर्ति का सिद्धान्त भी कहा जाता है। कीन्स ने बताया की मुद्रा एक तरल वस्तु है, इसे तरलता भी कहा जाता है। आर्थिक ईकाइयाँ अपने व्यवहारों को पूरा करने के लिये अपनी सम्पति का कुछ भाग अत्यन्त तरल सम्पत्तियों जैसे– नकद मुद्रा, बॉण्ड आदि के रूप में रखना चाहती हैं। जब इस तरल कोष से कुछ उधार दिया जाता है, तो तरलता का परित्याग होता है, और इस तरलता के परित्याग के बदले जो पारितोषिक प्राप्त होता है, उसे ही ब्याज कहते है।

4.7 शब्दावली

पूँजीपति – जिसके पास पूँजी का स्वामित्व हो
नियोक्ता – उत्पादक

4.8 संदर्भ ग्रंथ

1. Monetary Theory G. N. Halm
2. The General Theory of Employment, Interest and Money J. M. Keynes

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.उत्तर – ब्याज पूँजी के परिमाण का प्रतिफल है।

2.उत्तर – बचत की माँग या निवेश की माँग अर्थव्यवस्था में रहने वाले उत्पादकों या नियोक्ताओं द्वारा निवेश के लिये की जाती है।

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. परम्परागत ब्याज के सिद्धांत की व्याख्या करिये।
2. कीन्स द्वारा प्रतिपादित ब्याज का तरलता अधिमान सिद्धांत को विस्तार में समझाइये।

खण्ड 4 इकाई–5

लाभ : जोखिम एवं अनिश्चितता वहन, शुम्पीटर का सिद्धान्त

इकाई की रुपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 लाभ (**Profit**)

5.3 नाइट का जोखिम एवं अनिश्चितता वहन सिद्धान्त

5.4 शुम्पीटर का नवप्रवर्तन सिद्धान्त

5.5 बोध प्रश्न

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 संदर्भ ग्रंथ

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह समझ सकेंगे कि –

- लाभ क्या होता है?
- सामान्य एवं असामान्य लाभ का परिचय।
- नाइट का जोखिम एवम् अनिश्चितता वहन का सिद्धांत क्या है?

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में प्रोफेसर नाइट द्वारा प्रतिपादित जोखिम एवम् अनिश्चितता वहन सिद्धांत को विस्तारपूर्वक समझाया गया है। लाभ एक गैर प्रसंविदा स्वभाव की आय होती है, जो भूमिपति, श्रमिक तथा पूँजीपति को प्रसंविदात्मक आय के भुगतान के पश्चात साहसी को प्राप्त होता है। लाभ से अभिप्राय कुल आय के उस भाग से है, जो उत्पादन प्रक्रिया में कुल आय के उस भाग से है, जो उत्पादन प्रक्रिया में कुल खर्चों के भुगतान के बाद शेष बचती है।

5.2 लाभ (Profit)

प्रो0 वाकर के अनुसार –कुल लाभ अनेक तत्वों के मिश्रण से बना होता है, शुद्ध लाभ उनमें से एक हैं।

कुल लाभ = कुल आय–कुल व्यापारिक व्यय

= साहसी द्वारा प्रयुक्त साधनों का प्रतिफल+ह्रास/संरक्षण व्यय +प्रबन्ध का प्रतिफल +एकाधिकारी लाभ +अकस्मिक लाभ +शुद्ध लाभ

शुद्ध लाभ = कुल लाभ–(साहसी के साधनों का प्रतिफल +हास तथा संरक्षण व्यय +प्रबन्ध का प्रतिफल +एकाधिकारी लाभ +आकस्मिक लाभ)

समान्य लाभ –

उत्पादन प्रक्रिया में साहसी को संलग्न रखने हेतु उसे आवश्यक, न्यूनतम रूप से प्राप्त होने वाले लाभ को सामान्य लाभ कहते हैं। लाभ की यह न्यूनतम सीमा है, जिससें कम लाभ प्राप्त होने पर साहसी जोखिम उठाना त्याग देगा।

असामान्य लाभ –

साहसी को सामान्य लाभ के अतिरिक्त जो कुछ भी लाभ स्वरूप प्राप्त होता है, उसे असामान्य लाभ कहते हैं।

5.3 नाइट का जोखिम एवं अनिश्चितता वहन सिद्धान्त

प्रो0 नाइट ने अपनी पुस्तक 'Risk .uncertainty and profit''में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार लाभ अनिश्चितता के कारण उत्पन्न जोखिम को वहन करने का प्रतिफल है, जो इसके लिये साहसी को प्राप्त होता है। लाभ के सम्बन्ध में नाइट प्रवैगिक अर्थव्यवस्था को स्वीकार करते हैं।

प्रो0 नाइट के अनुसार –

प्रवैगिकता या परिवर्तन का होना ही लाभ के जन्म के लिये आवश्यक नहीं हैं यदि भविष्य में होने वाले पनिवर्तनों के सम्बन्ध में अनुमान किया जा सके, उन्हें जाना जा सके तो इस प्रकार के परिवर्तन के कारण लाभ नहीं उत्पन्न होगा, लाभ का कारण ही भविष्य की अनिश्चितता है।

नाइट ने जोखिम को दो भागों में बाँटा –

(क) ऐसे जोखिम , जो अनुमान लगाने योग्य हों –

इस प्रकार की जोखिमें ऐसी जोखिमें हैं, जिनका बीमा कराया जा सकता है, जैसे –आग लगना, चोरी , अविश्वसनीय कर्मचारी आदि। बीमा कम्पनी को बीमा के लिये जो प्रीमियम दिया जाता है, उसे अन्य व्यापारिक खर्चों की भाँति उत्पादन लागत में रखा जाता है ।

(ख) अनिश्चित स्वभाव की (गैर –अनुमानेय) जोखिमें –

ये ऐसे जोखिम होते हैं, जिनका पहले से कोई ज्ञान न होने के कारण बीमा नहीं कराया जा सकता है, जैसे–

(1) प्रतियागिता का जोखिम।

(2) व्यापार –चक्र सम्बन्धी जोखिम ।

(3) सरकार की नीति में परिवर्तन से जुड़े जाखिम।

(4) नयी मशीनों , तकनीक, अविष्कार के कारण जोखिम।

नाइट दूसरे प्रकार की जोखिमों को अनिश्चितता कहते हैं और लाभ इन अनिश्चितताओं का ही प्रतिफल है।

स्थैतिक अवस्था में जहाँ प्रत्येक चीज निश्चित है, लाभ का प्रश्न ही नहीं उठता लाभ केवल प्रवैगिक अवस्था असके सम्बन्ध कें अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लेने पड़ते हैं। उसे लाभ या हानि का सामाना करना पड़ता है। उत्पादन के अन्य साधनों का पारिश्रमिक निश्चित होने के कारण शेष अवशिष्ट भाग ही साहसी का लाभ कहलाता है।

नाइट के अनुसार साहसी की आय के दो तत्व हो सकते हैं– एक मजदूरी ,ब्याज आदि की तरह से लागत का तत्व तथा दूसरा आधिक्य तत्व। अंततः नाइट यह प्रतिपादित करते हैं कि एक प्रवैगिक अर्थव्यवस्था में साहसी जोखिम उठाने तथा संगठन करने , दोनों ही कार्यों को करता है, इसलिये उसे दोनों ही कार्यो के प्रतिफल में जो आय प्राप्त होती है, वह लाभ है।

आलोचनायें –

(1) प्रो0 जे0 के0 मेहता के अनुसार नाइट के सिद्धान्त की सबसे बड़ी कमी यह है कि उनका सिद्धान्त लाभ तथा आकस्मिक आय में अन्तर नहीं करता है।

(2) संगठन से प्राप्त आय को जोखिम के कारण उत्पन्न लाभ से अलग नहीं किया जाता है।

(3) नाइट ने माना कि लाभ वह अवशेष है, जो उत्पत्ति के अन्य साधनों को पारिश्रमिक देनें के बाद साहसी के पास बच जाता है, इस प्रकार लाभ केवल अनिश्चितता वहन करने का प्रतिफल नहीं हुआ।

5.4 शुम्पीटर का नवप्रवर्तन सिद्धान्त

जोसेफ शुम्पीटर ने बताया कि साहसी का प्रमुख कार्य उत्पादन – क्रिया में नवप्रवर्तन को जन्म देना है। इसी नवप्रवर्तन की क्रिया का प्रतिफल ही लाभ है।

साहसी की आय उत्पादन मात्रा तथा उत्पादन लागत के साथ–साथ उत्पादित वस्तु की माँग पर आश्रित है। अतः नवप्रवर्तन एक ओर उत्पादन फलन में लाया जाने वाला परिवर्तन है तथा दूसरी ओर ऐसा परिवर्तन है, जो वस्तु की माँग में वृद्धि ला सके। नवप्रर्वन के अंतर्गत निम्न क्रियायें आती है–

(1) उत्पादन की नयी प्रविधि/तकनीक की खोज ।

(2) आगतों के नये स्त्रोत की खोज ।

(3) उद्योग की नयी संगठन संरचना।

(4) बाजार से नयी वस्तु का प्रचलन ।

(5) नये बाजार की खोज ।

प्रो. शुम्पीटर ने इस बात पर बल दिया कि साहसी को यदि किसी नवप्रर्वन के कारण सफलता मिली तथा असके फल– स्वरूप या तो उत्पादन –लागत में कमी या माँग में वृद्धि हुयी तो लाभ का स्जन होगा।

स्पष्ट है कि लाभ साहसी के उस प्रयास का ही परिणाम है, जिसे , नवप्रवर्तन कहा जा सकता है। यह आवश्यक नहीं कि साहसी उस नयी प्रविधि का अविष्कार को प्रयोग करने के कारण लाभ प्राप्त होगा। शुम्पीटर यह भी कहते हैं कि नतप्रवर्तनजन्य लाभ कहीं स्थायी नहीं होगा, यह एक अस्थायी अवशेष या अतिरेक होता है।

शुम्पीटर के सिद्धान्त की आलोचनायें

(1) साहसी के कार्यों के सम्बन्ध में संकुचित दृष्टिकोण, क्योंकि शुम्पीटर ने साहसी के केवल नवप्रवर्तन से जुड़े एकमात्र कार्य पर बल दिया।

(2) शुम्पीटर का सिद्धान्त लाभ का स्पष्ट तथा विस्तृत विवेचन नहीं प्रस्तुत करता है।

(3) प्रो0 शुम्पीटर यह नहीं मानते की साहसी जोखिम उठाता है।

5.5 बोध प्रश्न

1. लाभ की परिभाषा क्या है?

2. सामान्य लाभ क्या होता है?

3. असमान्य लाभ क्या है?

5.6 सारांश

लाभ अनिश्चितता के कारण उत्पन्न जोखिम को वहन करने का प्रतिफल है, जो इसके लिये साहसी को प्राप्त होता है। लाभ के सम्बन्ध में नाइट प्रवैगिक अर्थव्यवस्था को स्वीकार करते हैं। प्रवैगिकता या परिवर्तन का होना ही लाभ के जन्म के लिये आवश्यक नहीं हैं यदि भविष्य में होने वाले पनिवर्तनों के सम्बन्ध में अनुमान किया जा सके, उन्हें जाना जा सके तो इस प्रकार के परिवर्तन के कारण लाभ नहीं उत्पन्न होगा, लाभ का कारण ही भविष्य की अनिश्चितता है।

5.7 शब्दावली

जोखिम – खतरा

प्रवैगिक – परिवर्तन

5.8 संदर्भ ग्रंथ

1. The Conception of Surplus in Theoretical Economics A. K. Dass Gupta

2. Income. Employment and Economic Growth W. C. Patterson

3. The Distribution of National Income M. Kalecki

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.उत्तर – लाभ अनिश्चितता के कारण उत्पन्न जोखिम को वहन करने का प्रतिफल है, जो इसके लिये साहसी को प्राप्त होता है।

2.उत्तर – उत्पादन प्रक्रिया में साहसी को संलग्न रखने हेतु उसे आवश्यक, न्यूनतम रूप से प्राप्त होने वाले लाभ को सामान्य लाभ कहते हैं।

3.उत्तर – साहसी को सामान्य लाभ के अतिरिक्त जो कुछ भी लाभ स्वरूप प्राप्त होता है, उसे असामान्य लाभ कहते हैं।

5.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. प्रोफेसर नाइट द्वारा दिये गये जोखिम एवम् अनिश्चितता वहन सिद्धांत को विस्तारपूर्वक समझाइये।